वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक ७
जुलाई २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ७

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

आषाढ़, सम्वत् २०७९

जुलाई २०२२

अनुक्रमणिका

* रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, हावड़ा (स्वामी तन्निष्ठानन्द) २९६
* (बच्चों का आंगन) विजय या वीरगति का प्रण (स्वामी गुणदानन्द) ३०४
* स्वाधीनता आन्दोलन की क्रान्ति ज्वालाएँ (अरुण चूड़ीवाल) ३०८
* (युवा प्रांगण) करुणा का विस्तार कर सार्थक मनुष्य बनें (सीताराम गुप्ता) ३११
* पात्र की अनुकूलता (उत्कर्ष चौबे) ३१४
* रहीम की रक्षा (गुरुप्रसाद) ३२१
* श्रद्धा : भौतिक और आध्यात्मिक विकास की कुंजी (पी. परमेश्वरन्) ३२५
* गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र...(स्वामी सत्यरूपानन्द) ३३०
* (कविता) गुरु-वंदना (डॉ.ओमप्रकाश वर्मा) ३१७
* (कविता) प्रभु आइये (विजय श्रीवास्तव) ३१७

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २९३
पुरखों की थाती २९३
सम्पादकीय २९४
आध्यात्मिक जिज्ञासा ३०५
श्रीरामकृष्ण-गीता ३१३
प्रश्नोपनिषद् ३१६
रामराज्य का स्वरूप ३१८
सारगाछी की स्मृतियाँ ३२२
गीतातत्त्व-चिन्तन ३२८
साधुओं के पावन प्रसंग ३३१
समाचार और सूचनाएँ ३३४

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ का चित्र रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, हावड़ा (रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शिक्षण एवं अनुसन्धान संस्थान, बेलूड़, हावड़ा) का है। इसकी स्थापना ४ जुलाई, २००५ ई. में हुई। विस्तृत विवरण के लिए पृष्ठ संख्या २९६ देखे।

जुलाई माह के जयन्ती और त्यौहार

१३	गुरु पूर्णिमा
२६	स्वामी रामकृष्णानन्द
१०,२४	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री सुशील कुमार गुप्ता, विकासपुरी, दिल्ली	५१००/-
श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	८०००/-
श्रीमती सावित्री बियानी, छावनी, नागपुर (महा.)	५०००/-
श्री राम भारोसा ठाकुर, पहेतिया,वैशाली (बिहार)	२१००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६८२. श्री अनुराग प्रसाद, गाजियाबाद (उ.प्र.)	लाईब्रेरी शा. दूधाधारी बजरंग कन्या महाविद्यालय, रायपुर

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **– व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

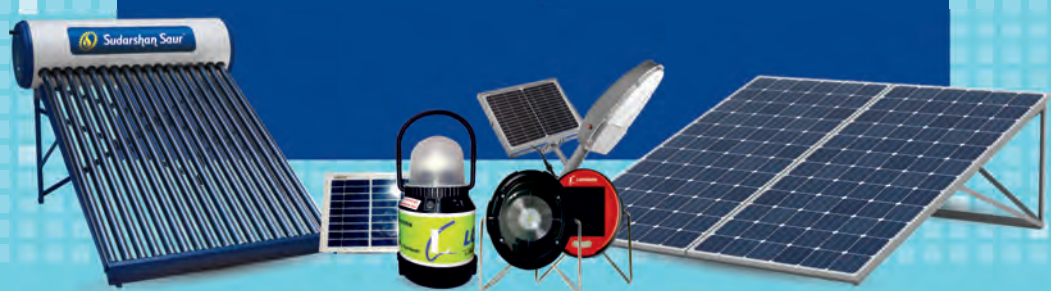

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com

Toll Free
1800 233 4545

E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **जुलाई २०२२** **अंक ७**

श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया हरिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षीकुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

– स्वप्न के प्रभाव से जिस प्रकार अपने में अन्तःस्थ वस्तु ही बहिर्भाग में स्थित लगती है, उसी प्रकार माया द्वारा विश्व बहिर्भाग में विरचित होने पर भी जो दर्पण में दृश्यमान (प्रतिबिम्बित) नगर के समान स्वयं में ही अवस्थित हुए-से लगते हैं एवं प्रबोधकाल (समाधि-अवस्था) में अपने अद्वितीय स्वरूपमात्र को ही प्रत्यक्ष करते हैं, उन गुरुरूपधारी श्रीदक्षिणामूर्ति को नमस्कार।।

पुरखों की थाती

ऋणशेषोऽग्निशेषश्च शत्रुशेषस्तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धेत तस्मान्निःशेषमाचरेत्।।७६४।।
(महाभारत)

– यदि कोई व्यक्ति ऋण, अग्नि या शत्रु को थोड़ी मात्रा में भी छोड़ दे, तो इनमें बारम्बार वृद्धि हो जाती है, अतः इन तीनों को पूरी तरह से समाप्त कर डालना चाहिए।

कर्तव्यम् आचरन् काम् अकर्तव्यम् अनाचरम्।
तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः।।७६५।।
(योगवासिष्ठ)

– जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ और अकर्तव्यों को छोड़ता हुआ, स्वाभाविक रीति से कर्म करता रहता है, उसी को आर्य कहते हैं।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम्।
कष्टात्कष्टतरं चैव पर-गेह-निवासनम्।।७६६।।

– मूर्खता अवश्य ही कष्टदायी है, यौवन भी कष्टकारक है, परन्तु दूसरों के घर में निवास करना सर्वाधिक कष्टप्रद है।

सम्पादकीय

गुरु-कृपा अपरम्पार

गुरुदेव की कृपा अपरम्पार है। गुरुदेव की करुणा अपार, असीमित और निष्कारण है। जब संसार के सभी स्थानों से, सभी लौकिक सम्बन्धों से सहायता की अपेक्षा से मानव हताश, निराश हो जाता है, जब कहीं से उसे उसके तप्त हृदय को शान्ति-आशा की किरण दृष्टिगोचर नहीं होती है, जब वह संसार-व्याल से दंसित, काल-प्रताड़ित, अशान्त, दुखित और भयभीत हो जाता है, तब गुरुदेव ही उसे अपनी स्निग्ध सान्निध्य में शरण देकर आश्वस्त करते हैं और अपने पावन दिव्य सान्निध्य में अमृत मन्त्र प्रदान कर शान्ति और निर्भयता प्रदान करते हैं। जब नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) पारिवारिक विभिन्न समस्याओं से जगत में चारों ओर से निराश हो गये, तब उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण देव से ही माँ-भाइयों के कष्ट-निवारण हेतु प्रार्थना की थी और श्रीरामकृष्ण देव के 'अच्छा, जा उनको मोटे अन्न-वस्त्र का अभाव नहीं रहेगा।' कहने पर ही आश्वस्त हुए थे। जब उन्हें समाधि-सुख की तीव्र व्याकुलता हुई, तो गुरुदेव ने समाधि की अनुभूति कराकर भी अपने कार्य के पूर्ण होने तक ताला लगा दिया था।

गुरुदेव इतने दयालु हैं कि यदि कभी इष्ट, जिनकी आराधना और भक्ति भक्त नित्य करता है, उन इष्ट के क्रोधित होकर अभिशाप देने पर भी, वे उसका मंगल ही करते हैं। जब एक शिष्य को शिवजी ने शाप दे दिया, तो गुरुदेव ने ही करुणाविगलित होकर अपनी निष्कारण कृपा से शिष्य की रक्षा की। ऐसी निष्कारण गुरु-कृपा है!

श्रीरामचरितमानस की वह प्रसिद्ध घटना यहाँ उल्लेखनीय है। संशयी गरुड़जी कागभुसुंडीजी के पास जाते हैं और वहाँ उनसे भगवान श्रीराम की कथा सुनकर उनका संशय दूर हो जाता है। उसके बाद गरुड़जी ने पूछा कि आपको यह काग-शरीर कैसे मिला? तो कागभुसुंडीजी ने पूर्वजन्म की बड़ी मार्मिक घटना सुनाई। उन्होंने कहा –

कलियुग में अयोध्या में शुद्र-शरीर में मेरा जन्म हुआ। मैं मन-वचन-कर्म से शिवजी का सेवक और अन्य देवताओं का निन्दक तथा अहंकारी था। मैं धन के मद से मत्त, बकबादी, उग्रबुद्धि, दम्भी था। श्रीराम की राजधानी में रहकर भी मैं उस समय उसकी महिमा नहीं जानता था। कलियुग में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह, मद और काम आदि ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गये। लोग जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ बीज उगता नहीं था। लोग पीड़ित और दुखित रहने लगे। फिर भी मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा, किन्तु एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्ति का मारा विदेश चला गया। मैं उज्जैन गया। वहाँ सम्पत्ति पाकर भगवान शिव की आराधना करने लगा। वहाँ एक ब्राह्मण थे, जो वैदिक विधि से शिवजी की पूजा करते थे और श्रीहरि के निन्दक नहीं थे। मैं कपटता से उनकी सेवा करता था। बाहर से विनम्र देखकर उन ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मन्त्र प्रदान किया। इससे मेरा अहंकार और बढ़ गया। मुझे अन्य हरिभक्तों और द्विजों से जलन होती और विष्णु भगवान से द्रोह करता था। मेरे इस आचरण से गुरुजी बहुत दुखित होते थे। उन्होंने एक दिन मुझे बुलाकर बहुत प्रकार से समझाया। उन्होंने कहा कि हे पुत्र ! शिवजी की सेवा का फल यही है कि श्रीराम के चरणों में प्रगाढ़ प्रेम हो। शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजी को ही भजते हैं। ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणों के प्रेमी हैं, अरे अभागे! उनसे द्रोह करके तू सुख चाहता है।

गुरुजी अत्यन्त दयालु थे। उन्हें क्रोध नहीं आता था। वे मुझे बार-बार उत्तम ज्ञान की शिक्षा देते थे। वे मेरे कल्याण की ही बात करते थे, किन्तु मुझे वह अच्छी नहीं लगती थी। एक दिन मैं शिवजी के मन्दिर में बैठकर शिव-नाम जप रहा था। उसी समय गुरुजी वहाँ आ गये, किन्तु अहंकार के कारण मैं उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया। दयालु गुरुजी ने मुझे कुछ नहीं कहा। उनके हृदय में लेशमात्र भी क्रोध नहीं

हुआ। किन्तु गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप है, इसलिये शिवजी इसे सहन नहीं कर सके –

सो दयाल नहीं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।।
(७/१०६/ख)

मन्दिर में आकाशवाणी हुई – अरे अभागा ! मूर्ख ! अहंकारी ! यद्यपि तुम्हारे गुरु को क्रोध नहीं है। वे कृपालु और यथार्थ ज्ञानी हैं। तब भी रे मूर्ख ! तुम्हें मैं शाप दूँगा –

मंदिर माझ भई नभबानी।
रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुरु कें नहिं क्रोधा।
अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।
तदपि साप सठ दैहउँ तोही। ७/१०६/१-३

शिवजी ने घोर शाप दे दिया। उन्होंने कहा –

बैठि रहेसि अजगर इव पापी।
सर्प होहि खल मल मति ब्यापी।।
महा बिटप कोटर महुँ जाई।
रहु अधमाधम अधगति पाई।। ७/१०६/७-८

अरे दुष्ट ! तू गुरुदेव के समक्ष अजगर की भाँति बैठा रहा। रे दुष्ट ! तेरी बुद्धि पाप से आवृत हो गयी है। इसलिये तू सर्प हो जा। रे अधमाधम ! सर्पयोनि की इस अधोगति को पाकर किसी बड़े भारी पेड़ के खोखले में जाकर रह।

शिवजी के इस शाप को सुनकर दयालु गुरुदेव हाहाकार कर उठे। मुझे काँपते हुए देखकर उनके हृदय में बड़ा सन्ताप हुआ –

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप।।
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि।।
(७/१०७/क,ख)

उसके बाद गुरुदेव शिवजी के सम्मुख सप्रेम दण्डवत होकर हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से 'नमामीशमीशान निर्वाणरूपम्' आदि से विनती करने लगे। शिवजी ने गुरुदेव की विनती से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। गुरुदेव ने कहा, हे दीनदयाल ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो पहला वर अपने चरणों में भक्ति दीजिये और दूसरा अल्प समय में ही इसे शाप से मुक्त कर दीजिये। हे नाथ, वही कीजिये, जिससे इसका परम कल्याण हो –

एहि कर होइ परम कल्याना।
सोइ करहु अब कृपानिधाना।। ७/१०८/१

शिवजी ने कहा, यद्यपि इसने दारुण पाप किया है। मैंने इसे क्रोध कर शाप दे दिया है। तो भी तुम्हारी साधुता देखकर इस पर विशेष कृपा करूँगा। मेरा शाप व्यर्थ नहीं होगा, किन्तु इसे जन्म-मरण का कष्ट नहीं होगा। किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नहीं मिटेगा। विप्र-द्रोह न करना और सन्तों को भगवान के ही समान जानना आदि। शिवजी के वाणी को सुनकर गुरुदेव हर्षित होकर अपने घर चले गये। यहाँ हम देखते हैं कि किस प्रकार शिष्य की दुर्गति को देखकर गुरु अत्यन्त द्रवित होकर उसके कल्याण के लिये इष्ट से अनुनय करते हैं।

पंचवर्षीय बालक ध्रुव के स्वाभिमान की रक्षा

जब पाँच वर्ष के बालक ध्रुव को उनकी विमाता सुरुचि ने पिता उत्तानपाद की गोद में बैठने से कठोर शब्दों में मना कर दिया, तो ध्रुव को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने अपनी माता सुनीति से रोते हुए सारी बातें बतायीं। सुनीति ने ध्रुव से कहा – जगतपालक श्रीहरि की आराधना से ही ब्रह्माजी को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ था। हे पुत्र ! तुम भी भक्तवत्सल भगवान का ही आश्रय लो। ध्रुव ने श्रीहरि के आराधनार्थ राजमहल को छोड़कर वन की ओर प्रस्थान किया। लेकिन भगवान की आराधना कैसे की जाती है, ध्रुव को ज्ञात नहीं था। तब करुणामय कृपागार गुरुरूप में नारदजी प्रकट होते हैं और स्वाभिमानी दृढ़ प्रतिज्ञ ध्रुव को भगवान के रूप-गुण और उपासना विधि का उपदेश देते हैं तथा अन्त में भगवन्नाम का द्वादशाक्षर मन्त्र प्रदान करते हैं। ध्रुव ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति से भगवान की उपासना की। उनकी उपासना से भगवान प्रकट हुए और उन्हें सर्वश्रेष्ठ अविचल पद प्रदान किया। गुरु-कृपा से ध्रुव विमाता के व्यंग्य-वाण की व्यथा से मुक्त हुए और अचल पद एवं हरिभक्ति का वर पाकर आनन्दित हुए।

कितने शिष्यों के जीवन में सद्गुरुओं ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों संकटों से उबारकर उनके चित्त में शान्ति प्रदान की है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''भगवान की कृपा अथवा उनकी योग्यतम सन्तान महापुरुषों की कृपा प्राप्त कर लो। ये ही दो भगवत्प्राप्ति के प्रधान उपाय हैं।'' ○○○

विश्वविद्यालय स्थापना विशेष

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, हावड़ा

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शिक्षण एवं अनुसन्धान संस्थान, बेलूड़, हावड़ा)

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

पश्चिम बंगाल के हावड़ा में बेलूड़ ग्राम में स्थित रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय (रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान) नामक मानित विश्वविद्यालय (डीम्ड यूनिवर्सिटी) एक अनुपम और अद्भुत विश्वविद्यालय है, जहाँ छात्रों को शिक्षा के साथ-साथ भारत की गरिमामयी संस्कृति का पाठ भी पढ़ाया जाता है। स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों पर संचालित यह विश्वविद्यालय आज केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी अपनी पहचान बनाने में सक्षम है। लगभग एक शतक पूर्व सम्पूर्ण विश्व में वेदान्त की ध्वजा फहरानेवाले विश्ववन्द्य संन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा की नयी व्याख्या करते हुए कहा था कि शिक्षा को केवल जीविका का साधन न बनाकर, उसका क्षेत्र बढ़ाते हुए उसे मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए सहायक बनाना चाहिए। वे चाहते थे कि शिक्षा में भारत की प्राचीन आध्यात्मिक भावधारा तथा पश्चिम के आधुनिक विज्ञान का समन्वय हो। बेलूड़ का यह विश्वविद्यालय स्वामीजी के आदर्शों को साकार करने का भगीरथ प्रयास कर रहा है।

स्वामी विवेकानन्द की अभिलषित शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''जनता को यदि आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा न दी जाय, तो भारत के एक छोटे-से गाँव के लिए संसार की सारी सम्पत्ति लगा देने से भी वह पर्याप्त नहीं होगी। शिक्षा प्रदान करना ही हमारा प्रधान कार्य होना चाहिए, चरित्र और बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा का विस्तार करना चाहिए। ... मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ...गलत शिक्षा विदेशी भाषा में दूसरों के विचारों को रटकर, अपने मस्तिष्क में उन्हें ठूँसकर और विश्वविद्यालयों की कुछ उपाधियाँ प्राप्त करके, तुम अपने को शिक्षित समझते हो ! क्या यही शिक्षा है? तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो मुंशीगिरी करना

या वकील हो जाना, या अधिक-से-अधिक डिप्टी मैजिस्ट्रेट बन जाना, जो मुंशीगिरी का ही दूसरा रूप है, बस यही न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा?

हमें कैसी शिक्षा चाहिए?

''... हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र बने, मानसिक बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम विदेशी अधिकार से स्वतन्त्र रहकर अपने निजी ज्ञान-भण्डार की विभिन्न शाखाओं का और उसके साथ ही अँग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करें। हमें यान्त्रिक और ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है, जिनसे उद्योग-धन्धों की वृद्धि और विकास हो, जिससे मनुष्य नौकरी के लिए मारा-मारा फिरने के बदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त कमाई कर सके और आपातकाल के लिए संचय भी कर सके। ... सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य-निर्माण' ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस प्रक्रिया से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। ... ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवल एक ही मार्ग है, वह है 'एकाग्रता', 'मन की एकाग्रता' ही शिक्षा का सम्पूर्ण सार है।

''मेरे मतानुसार शिक्षा का अर्थ है – 'गुरुगृह-वास'। शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिष्य को बाल्यावस्था से ऐसे व्यक्ति (गुरु) के साथ रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे। हमारे देश में ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता आया है। ज्ञानदान का भार पुन: त्यागियों के कन्धों पर पड़ना चाहिए। भारतवर्ष की पुरानी शिक्षाप्रणाली वर्तमान प्रणाली से बिलकुल भिन्न थी। विद्यार्थियों को शुल्क नहीं देना पड़ता था। ऐसी धारणा थी कि ज्ञान इतना पवित्र है कि उसे किसी मनुष्य को बेचना नहीं चाहिए। ज्ञान का दान मुक्तहस्त होकर, बिना कोई धन लिये करना चाहिए। शिक्षकगण विद्यार्थियों को नि:शुल्क अपने पास रखते थे; इतना ही नहीं, अधिकांश गुरु तो अपने शिष्यों को अन्न और वस्त्र भी देते थे। इन शिक्षकों के निर्वाह के लिए धनी लोग उन्हें दान देते थे और उसी से वे अपने शिष्यों का पालन-पोषण करते थे।...''

स्वामीजी की भविष्यवाणी

महासमाधि के कुछ दिन पहले अपनी शिष्या भगिनी निवेदिता से स्वामीजी ने कहा था, ''बेलूड़ मठ से जो आध्यात्मिक धारा प्रवाहित होगी, वह आगामी १५०० वर्षों तक अक्षुण्ण रहेगी और **यह स्थान एक महान विश्वविद्यालय में रूपान्तरित होगा।** यह केवल मेरी कल्पना मात्र नही है, मैं इसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ !'' यह बात स्वामीजी की एक विदेशी शिष्या कुमारी जोसेफाईन मैक्लाउड ने अपने संस्मरणों में लिखा है।

सन् १८९८ में एक दिन स्वामीजी अपने शिष्य **शरच्चन्द्र चक्रवर्ती** के साथ लगभग चार बजे बेलूड़ मठ की नयी जमीन में भ्रमण करने निकले, तब उन्होंने कहा था – ''वह जो मठ के दक्षिण भाग की जमीन देख रहा है, वहाँ पर विद्या का केन्द्र बनेगा। व्याकरण, दर्शन, विज्ञान, काव्य, अलंकार, स्मृति, भक्तिशास्त्र और राजभाषा की शिक्षा उसी स्थान में दी जायेगी। प्राचीन काल की पाठशालाओं के अनुकरण पर यह **विद्या-मन्दिर** स्थापित होगा। बालब्रह्मचारी उस स्थान पर रहकर शास्त्रों का अध्ययन करेंगे। उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध मठ की ओर से किया जायेगा। ये सब ब्रह्मचारी पाँच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् यदि चाहेंगे, तो घर लौटकर गृहस्थी कर सकेंगे। यदि इच्छा हो, तो मठ के वरिष्ठ संन्यासियों की अनुमति लेकर संन्यास ले सकेंगे। इन ब्रह्मचारियों में जो उच्छृंखल या दुश्चरित्र पाये जायेंगे, उन्हें मठाधिपति उसी समय बाहर निकाल देंगे। यहाँ पर सभी जाति और वर्ण के शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जायेगी। इसमें जिन्हें आपत्ति होगी, उन्हें नहीं लिया जायेगा, परन्तु जो लोग अपनी जाति वर्णाश्रम के आचार को मानकर चलना चाहेंगे, उन्हें अपने भोजन आदि का प्रबन्ध स्वयं कर लेना होगा। वे केवल अध्ययन ही दूसरों के साथ करेंगे। उनके भी चरित्र के सम्बन्ध में मठाधिपति सदा कड़ी दृष्टि रखेंगे। यहाँ पर शिक्षित न होने से कोई संन्यास का अधिकारी नहीं बन सकेगा। धीरे-धीरे जब इस प्रकार मठ का काम प्रारम्भ होगा, उस समय कैसा होगा, बोल तो !''

स्वामीजी ने एक प्रसंग में लिखा है, 'अब हमारा ध्येय धीरे-धीरे इस (बेलूड़) मठ को एक सर्वांगीण, बहुमुखी विश्वविद्यालय में परिणत करना होगा !' अपने जीवन के अन्तिम दिन स्वामीजी ने कहा था, 'प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक आदर्शों को ध्यान में रखकर आधुनिक विज्ञान

तथा तकनीकी के साथ बेलूड़ मठ में एक विश्वविद्यालय प्रस्थापित करना होगा!' जगद्गुरु स्वामी विवेकानन्द जी की इस भविष्यवाणी पर एक शतक से अधिक काल तक गहन मन्थन किया गया।

बेलूड़ स्थित रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय (विवेकानन्द शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्था) के आदर्श और प्रेरणा स्रोत स्वामी विवेकानन्द जी ही हैं। आज यह विश्वविद्यालय स्वामीजी की भविष्यवाणी को कार्यान्वित कर रहा है। उनके वे स्वप्न आज हमें साकार होते दिख रहे हैं।

स्वामीजी द्वारा अभिलषित विश्वविद्यालय

जब स्वामीजी ने बेलूड़ मठ को विश्वविद्यालय की संज्ञा दी, तब उन्हें क्या अपेक्षित था? इस बात पर बहुत चर्चा होती रही। स्वामीजी के व्याख्यान, पत्र तथा साहित्य पर गहन चिन्तन किया गया और इससे एक बात स्पष्ट हुई – जहाँ मनुष्य तथा चरित्र-निर्माण की शिक्षा दी जाती हो, छात्रों में उच्च आदर्शों के बीज डालकर उनका सर्वांगीण विकास होता हो, वही केन्द्र विश्वविद्यालय होगा। स्वामीजी ने सपना देखा था कि बेलूड़ मठ और उसकी सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई शाखाएँ आध्यात्मिक तथा लौकिक शिक्षा का केन्द्र बनकर समाज के सभी स्तर के अज्ञान-अन्धकार को दूर करेंगी। बेलूड़ मठ मानो विश्वविद्यालय रूपी वृक्ष का मूल है और सम्पूर्ण रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के केन्द्र उस विशाल वृक्ष की शाखाएँ हैं। संघ की सभी शाखाएँ दशकों से विविध प्रकार से आध्यात्मिक तथा लौकिक शिक्षा दे रही हैं और स्वामीजी के सपने को साकार करने का प्रयास कर रही हैं। स्वामीजी को सनातन भारतीय ज्ञान परम्परा (प्राचीन भारतीय ज्ञान-परम्परा, उसकी आध्यात्मिक समझ तथा मानवी ज्ञान के सम्पूर्ण विस्तार की विलक्षण अन्तर्दृष्टि) का पाश्चात्य के आधुनिक वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय तथा दार्शनिक और गणितीय ज्ञान के साथ सुसंगत मेल अपेक्षित था।

विश्वविद्यालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस विश्वविद्यालय के निर्माण में असंख्य साधुओं, भक्तों, शुभचिन्तकों का योगदान और कई वरिष्ठ संन्यासियों का मार्गदर्शन मिला है। 'स्वामीजी का विश्वविद्यालय' यह जादुई

शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कुमारी जोसेफिन मैक्लाउड ने किया था। इस कार्य में अपने जीवन को न्यौछावर करनेवाले स्वामी **विमुक्तानन्द** जी महाराज के अथक प्रयास से यह कार्य आगे बढ़ा। रामकृष्ण संघ के पूर्वसंघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी **विरजानन्द** जी महाराज, श्रीमत् स्वामी **माधवानन्द** जी महाराज और

श्रीमत् स्वामी **वीरेश्वरानन्द** जी महाराज आदि महापुरुषों ने इस विश्वविद्यालय का स्वप्न अपने जीवन में सँजोये रखा था।

स्वामीजी के शिक्षाविषयक विचारों के कारण उन्हें आधुनिक भारत का शिक्षाविद् कहा जाता है। मनुष्य का सर्वांगीण विकास तथा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णत्व की अभिव्यक्ति, शिक्षा का यही लक्ष्य रखकर रामकृष्ण मिशन ने बेलूड़ में सन् १९३९ में 'रामकृष्ण मिशन विद्यामन्दिर' नामक उच्च शिक्षा-संस्थान स्थापित कर एक छोटा प्रयास किया। संस्थान का 'विद्या-मन्दिर' यह नाम स्वामीजी की इच्छानुसार रखा गया है। सन् १९६३ में स्वामीजी की जन्मशताब्दी के अवसर पर रामकृष्ण मिशन ने भारत सरकार के पास **विवेकानन्द विश्वविद्यालय** स्थापित करने का प्रस्ताव भेजा। इस दिशा में बहुत से प्रयत्न किये गये। विश्वविद्यालय-निर्माण हेतु भक्तों तथा शुभचिन्तकों से सहयोग प्राप्ति हेतु निवेदन किया गया था। वर्तमान बांगलादेश के भाग्यकुल ग्राम के स्व. श्री. कुमार प्रमथनाथ राय के सुपुत्र **श्री बलराम राय** ने इस कार्य हेतु **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द यूनिवर्सिटी ट्रस्ट** नामक न्यास स्थापित किया, ताकि विश्वविद्यालय का निर्माण हो और उसकी व्यवस्था सुचारु रूप से हो सके। सम्माननीय श्री.पी.सी.सरकार इस न्यास के अध्यक्ष थे, श्री शैलकुमार मुखर्जी तथा श्री वीरेन्द्रकुमार बोस को सॉलिसिटर और रामकृष्ण संघ के **दो वरिष्ठ संन्यासी** (स्वामी विमुक्तानन्द और स्वामी पुण्यानन्द) इस न्यास के सदस्य थे। दाता ने अपनी वसीयत में अपनी अचल सम्पत्ति का एक भाग इस न्यास के लिए रखा था। उस जमाने में उस सम्पत्ति से वार्षिक लगभग डेढ़ लाख रुपयों की आय अपेक्षित थी। इस विश्वविद्यालय के निर्माण में लगभग दो करोड़ की राशि अनुमानित थी। इसके लिये राज्य तथा केन्द्र सरकार से पर्याप्त सहायता की अपेक्षा थी। इसका निवेदन (अपील) भी रामकृष्ण संघ की अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'वेदान्त-केसरी' के सितम्बर-१९६२ के अंक में प्रकाशित किया गया था। यह निवेदन रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन महासचिव श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने किया था। इस न्यास की सम्पत्ति १७ जून, १९६४ को रामकृष्ण मिशन को हस्तान्तरित की गयी। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री पंडित श्री जवाहरलाल नेहरू जी ने इसके लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजी थीं। पश्चिम बंगाल सरकार को इस विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु आवेदन किया गया। इसकी अपील ८ जुलाई, १९६४ को गई। दुर्भाग्यवश केन्द्र सरकार ने विवेकानन्द विश्वविद्यालय का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। रामकृष्ण मिशन की ओर से हो रहा प्रयास मानो कुछ समय के लिए रूक गया। ३१, मार्च १९८३ तक इस कार्य के लिए रु.६५,५०,००० रुपये जमा हुए थे।

विविध कारणों से इस कार्य में विलम्ब होता गया और अन्त में **५ जनवरी, २००५ को 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' (यू.जी.सी.) की ओर से 'रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शिक्षा एवं अनुसंधान संस्था' को मानित विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्राप्त हुई**। उस दिन सम्पूर्ण विश्व बड़े धूमधाम सें श्रीमाँ सारदादेवी का १५०वाँ जन्मोत्सव मना रहा था।

यह विश्वविद्यालय आरम्भ से ही स्वामीजी के आदर्शों पर निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। **४ जुलाई, २००५** को इस विश्वविद्यालय का शुभारम्भ **कोयम्बतूर** शाखा में एक मात्र विभाग के साथ हुआ था। वहाँ 'दिव्यांग व्यवस्थापन तथा विशेष शिक्षा' (डिसेबिलिटी मैनेजमेंट एण्ड स्पेशल एजुकेशन) नामक एक विभाग आरम्भ किया

कोयम्बतूर शाखा

गया। स्वामीजी के स्वप्नों को साकार करने का यह प्रथम प्रयास था। अगले कुछ वर्षों में रामकृष्ण मिशन के कलकत्ता स्थित **नरेन्द्रपुर** शाखा में 'एकीकृत ग्रामीण विकास एवं व्यवस्थापन' (इंटिग्रेटेड रुरल डेवलपमेंट एण्ड मैनेजमेंट) तथा झारखण्ड के **राँची** (मोराबादी) शाखा में 'एकीकृत ग्रामीण एवं आदिवासी विकास तथा व्यवस्थापन' (इंटिग्रेटेड रुरल एण्ड ट्राइबल डेवलपमेंट एण्ड मैनेजमेंट) नामक विभाग प्रारम्भ किये गये। इस विश्वविद्यालय के कोयम्बतूर शाखा ने २००७ में 'सामान्य तथा अनुकूलित शारीरिक

शिक्षा तथा योग' (जनरल एण्ड अॅडाप्टेड फिजिकल एजुकेशन एण्ड योगा) और २०१४ में 'कृषि शिक्षा तथा अनुसन्धान' (एग्रिकल्चरल एजुकेशन एण्ड रिसर्च) नामक विभाग आरम्भ किये। विश्वविद्यालय की विविध शाखाओं की स्थापना एवं विस्तार के साथ-साथ बेलूड़ स्थित मुख्य

नरेन्द्रपुर शाखा

विश्वविद्यालय परिसर में स्वामीजी के प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक आदर्शों के अनुसार आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी के साथ गतिविधियाँ बढ़ने लगीं। संस्कृत तथा मौलिक विज्ञान के प्रति विशेषाग्रह और पूर्व तथा पश्चिम के उत्तम तत्त्वों का समन्वय यह स्वामी विवेकानन्द का मनोहर सपना था। उन्होंने कहा था, '**इस बेलूड़ की भूमि पर ऐसा एक विश्वविद्यालय स्थापित करना होगा, जहाँ प्राचीन भारतीय परम्परागत विद्या को अक्षुण्ण रखकर उसका आधुनिक विज्ञान के साथ समन्वय किया जाये।**' स्वामीजी के स्वप्न को साकार करने के लिये बेलूड़ स्थित मुख्य परिसर में दो विभाग स्थापित किये गये। पहला विभाग गणितीय विज्ञान जिसमें मुख्यत: तीन मौलिक विज्ञान की शाखाएँ (गणित, सैद्धान्तिक भौतिकशास्त्र, सैद्धान्तिक संगणकशास्त्र) हैं। दूसरा विभाग भारतीय परम्परा तथा विरासत को समर्पित है, जिसमें संस्कृत, योग, प्राचीन भारतीय परम्परा तथा वेदान्त (विशेषत: उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता) संयुक्त हैं। इन दोनों विभागों के भवन आसपास एक समान हैं और स्वामीजी के स्वप्न को साकार कर रहे हैं।

इस विश्वविद्यालय का स्वप्न

यह विश्वविद्यालय शिक्षा का अति उच्च केन्द्र होगा, जहाँ दो महान श्रेष्ठताओं का संगम होगा – प्राचीन ज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वय। उपनिषदों की दिव्य वाणी है- **'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवाऽपरा च'** अर्थात् परा (पारमार्थिक) तथा अपरा (लौकिक) विद्या का संगम अपेक्षित है। यहाँ ऐसे सुशिक्षित युवक तथा युवतियों की सेना तैयार की जायेगी, जो निष्कलंक चरित्र तथा सर्वांगीण व्यक्तित्व के हों, जिन्हें मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण की शिक्षा मिली हो, जिनके पास सद्विचार के लिए मस्तिष्क, संवेदनशील हृदय तथा कर्म करने के लिये हाथ का सामंजस्यपूर्ण समन्वय हो और ये सारी बातें जिनमें कूट-कूट कर भरी हों।

इस विश्वविद्यालय का ध्येय

इस प्रकार इस विश्वविद्यालय का ध्येय छात्रों को प्राचीन भारतीय विरासत के अनुरूप आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के साथ जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण करनेवाली शिक्षा प्रदान करना है।

इस विश्वविद्यालय का कार्य

१. सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्टता का लक्ष्य – अध्यापन, अनुसन्धान तथा सभी शैक्षणिक कार्यों के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करना।

२. पूर्व और पश्चिम के मूल्यों का सम्मिश्रण – हमारे प्राचीन मूल्यों (जैसे- ज्ञान की पवित्रता, श्रद्धा, पवित्रता, सत्य तथा नि:स्वार्थता आदि) का सम्मिश्रण, मुख्यत: पाश्चात्य मूल्यों (जैसे – वैज्ञानिक मनोवृत्ति, तर्कसंगत दृष्टिकोण, तकनीकी निपुणता, सामूहिक कार्य (टीमवर्क), व्यावसायिक ईमानदारी (कार्य की नैतिकता) के साथ करना।

३. सामाजिक उत्तरदायित्व – युवकों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करने हेतु उन्हें शिक्षित-

राँची (मोराबादी) शाखा

प्रशिक्षित करना, ताकि वे प्रबुद्ध नागरिक बनकर **समाज-निर्माण** का विशाल कार्य कर सकें। यह तभी सम्भव होगा, जब वे समन्वय तथा शान्ति के ढाँचे में ढलकर अपने चरित्र का निर्माण करेंगे।

इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य

१. ऐसे विषयों में उच्च शिक्षा प्रदान करना, जो मानित विश्वविद्यालयों के मानकों के अनुरूप हो एवं छात्रों को स्नातकोत्तर तथा शोध-उपाधि में उत्कृष्टता एवं नवीनता प्राप्त करने में सहायक हो।

२. ऐसे विशिष्ट पाठ्यक्रम बनाना, जो हमारे परम्परागत शिक्षा प्रणाली से भिन्न हो, जिससे छात्र विश्वविद्यालयीय शिक्षा-प्रणाली में विशेष योगदान दे सकें।

३. विभिन्न क्षेत्रों में उच्च स्तर की शिक्षा तथा अनुसन्धान के अवसर प्रदान करते हुए पूर्णकालीन प्राध्यापक तथा शोध-छात्रों द्वारा विश्वविद्यालय के प्रांगण में ही शोधकार्य कराना।

४. यह विश्वविद्यालय ऐसे विभाग या पाठशालाएँ खोलने की सुविधा देता है, जहाँ वर्तमान तथा भविष्य के आवश्यकतानुसार क्षेत्रों की शिक्षा दी जाती है। ये वे क्षेत्र हैं, जिनकी शिक्षा हमारी वर्तमान परम्परागत शिक्षा-पद्धति में नहीं है। जिन क्षेत्रों का अभ्यास तथा अनुसन्धान भारत के लिए अत्यावश्यक है या हमारी परम्परा तथा संस्कृति की रक्षा एवं प्रचार-प्रसार करने हेतु उसकी आवश्यकता है, ऐसे क्षेत्रों का चयन कर शिक्षाविदों की सहायता से पाठ्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की जाती है।

५. यह विश्वविद्यालय कला, दर्शनशास्त्र, भौतिक तथा जैविक-विज्ञान, अभियान्त्रिकी तथा प्रौद्योगिकी, कृषि विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, सहायता तथा पुनर्वास, दिव्यांग व्यवस्थापन तथा विशेष शिक्षा, एकीकृत ग्रामीण विकास, पर्यावरण तथा आपदा प्रबन्धन जैसे विषयों की शिक्षा प्रदान करता है, इन क्षेत्रों को प्रोत्साहन देता है, इनके लिए नये उपक्रम प्रारम्भ कर उन्हें आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराता है।

६. यह विश्वविद्यालय उपर्युक्त क्षेत्रों में अनुसन्धान तथा विशेषज्ञता प्राप्त करने हेतु योजना बनाकर उसके लिए सुविधा प्रदान करता है तथा उसका प्रचार-प्रसार करता है।

७. यह विश्वविद्यालय वंचित-शोषित या अल्पविकसित समाज के उत्थान के लिए उन्हें विशेष शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान के अवसर प्रदान करता है।

८. यह विश्वविद्यालय युवकों तथा प्रौढ़ों का चरित्र-निर्माण करने हेतु उच्च मानवीय मूल्यों का प्रसार करते हुए भारत तथा सम्पूर्ण विश्व के लोगों का जीवन-स्तर उन्नत करने का प्रयत्न करता है।

९. यह विश्वविद्यालय भारत के पुनरुत्थान के लिए युवकों को प्रशिक्षण तथा विशेष शिक्षा प्रदान कर उन्हें उत्तम विश्व-नागरिक बनाने की चेष्टा करता है।

१०. यह विश्वविद्यालय स्वामी विवेकानन्द के उज्ज्वल भारत के सपनों की पूर्ति के लिए जो कुछ करना आवश्यक हो, वह सब करने का प्रयास करता है।

स्वामी विवेकानन्द का भारत की विज्ञान-शिक्षा तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान

यह बात सर्वविदित है कि करीब एक शतक पूर्व स्वामीजी ने सर जमशेदजी टाटा को भारत में मूलभूत विज्ञान शिक्षा तथा अनुसन्धान हेतु एक संस्था स्थापित करने की प्रेरणा दी थी। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जमशेदजी ने ऐसी ही संस्था की स्थापना करते समय उसका दायित्व स्वीकार करने के लिए स्वामीजी से निवेदन किया था। जमशेदजी ने जापान से शिकागो की समुद्री यात्रा के समय हुए संवाद का सन्दर्भ देते हुए स्वामीजी को २३ नवम्बर, १८९८ को पत्र लिखा था। जब यह संस्था आरम्भ हुई, तब दुर्भाग्यवश स्वामीजी या जमशेदजी जीवित नहीं थे। इस संस्था को प्रारम्भ करने में कई लोगों ने विरोध किया, पर उसका मुँहतोड़ उत्तर रामकृष्ण संघ की 'प्रबुद्ध-भारत' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका तथा स्वामीजी की शिष्या भगिनी निवेदिता ने अपने लेखों द्वारा दिया था। इसका परिणाम था कि भारत में सर्वप्रथम दो महत्त्वपूर्ण विज्ञान अनुसंधान संस्थाएँ प्रारम्भ

हुई। बेंगलुरु स्थित 'टाटा इन्स्टिट्यूट' (बाद में इसका नाम इंडियन इन्स्टिट्यूट ऑफ साइंस हुआ) तथा मुंबई स्थित 'टाटा इन्स्टिट्यूट ऑफ फन्डामेंटल रिसर्च' ये दोनों संस्थान स्वामीजी की प्रेरणा का ही परिणाम हैं। एक विशेष बात यह है कि बेंगलुरु की संस्था स्थापित करने के लिए स्वामीजी के शिष्य मैसूर के महाराजा ने जमीन दान में दी थी। ये दोनों संस्थाएँ केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में शिक्षा तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता और उत्कृष्टता के दृष्टान्त हैं।

इस विश्वविद्यालय की विशेषताएँ

यह विश्वविद्यालय वर्तमान में चार स्थानों में विद्यमान है, जिसके मुख्य पाँच विभाग हैं और उनके विषयों का क्षेत्र व्यापक है। यहाँ स्नातक स्तर से लेकर डॉक्टरेट (पीएचडी) स्तर तक शिक्षा का क्षेत्र है। यहाँ सामान्य लोगों से जुड़ते हुए उनके लिए विभिन्न विषयों के प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम (सर्टिफिकेट कोर्सेस) आयोजित किये जाते हैं। इस विश्वविद्यालय के छात्र न केवल विश्वविद्यालय परिसर में ही आकर शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, अपितु वे ऑनलाईन पद्धति से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अपना क्षेत्र बढ़ाते हुए यह विश्वविद्यालय किसानों के लिए भी कृषि सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करता है।

यह विश्वविद्यालय न नियमित शासकीय अनुदान पर चलता है, न वित्तीय रूप से पूर्णत: आत्मनिर्भर, न ही केवल धनार्जक निजी विश्वविद्यालय है। भक्तों, शुभचिन्तकों तथा दानदाताओं से प्राप्त राशि से जो निधि जमा हुई थी, उसकी आय को प्रति वर्ष विश्वविद्यालय के कार्यों में खर्च किया जाता है। यहाँ के स्थायी प्राध्यापकों को 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के अनुसार वेतन दिया जाता है, लेकिन छात्रों से केवल नाममात्र शुल्क लिया जाता है।

ऐसे विश्वविद्यालय का संचालन एक चुनौती है, जिसे अत्यल्प सहायता शासकीय अनुदान के रूप में केवल एक बार ही मिलती हो। यह विश्वविद्यालय मुख्यत: परोपकारी कार्यों में आस्था रखनेवाले शुभचिन्तकों तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के भक्तों के दान पर निर्भर है।

इस विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और आधुनिक विज्ञान के समन्वय के साथ छात्रों के सर्वांगीण विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ भारतीय शिक्षा पद्धति, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथा सामाजिक प्रासंगिकता के विषयों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा एवं अनुसंधान पर विशेष बल दिया जाता है।

इस विश्वविद्यालय का विकास उसकी स्थापना से ही 'सत्य', 'नि:स्वार्थ सेवा' तथा 'उद्देश्य की पवित्रता' स्वामीजी के इन आदर्शों की मजबूत नींव पर हो रहा है।

इस मानित विश्वविद्यालय की शाखाएँ कई स्थानों पर हैं। इस विश्वविद्यालय का जन्म केवल शैक्षणिक कार्यों के लिए ही नहीं, अपितु यह सत्य के मूलभूत मूल्यों, पवित्रता तथा नि:स्वार्थता को बढ़ावा देने की एक क्रान्ति है। यह मनुष्य में चरित्र की निष्कलंक समग्रता तथा मस्तिष्क, हृदय और हाथ का सुसंगत विकास करने का स्थान है।

इस विश्वविद्यालय में अर्ध-वार्षिक पाठ्यक्रम सत्र (सेमेस्टर) पद्धति से परीक्षा ली जाती है। साथ-साथ ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किये जाते हैं। यहाँ दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन पाठ्यक्रम होते हैं। दीर्घकालीन पाठ्यक्रम के अन्तर्गत डिप्लोमा, पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर पढ़ाई आती है। अल्पकालीन पाठ्यक्रम में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम आते हैं। अल्पकालीन पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय के क्षेत्र में नहीं आते, इसलिए अल्पकालीन पाठ्यक्रम से अर्जित अंक दीर्घकालीन पाठ्यक्रमों के अंकों में समाहित किये जाते हैं (सिस्टम आफ क्रेडिट एक्युमलेशन)। अल्पकालीन पाठ्यक्रम में मूल पाठ्यक्रम (कोर कोर्सेस), व्यवहारोन्मुखी पाठ्यक्रम (प्रैक्टिकल ओरिएंटेड कोर्सेस), आत्मनिर्भरशील पाठ्यक्रम (स्टैण्ड एलोन इन्डिपेन्डेन्ट कोर्सेस) जैसे अत्यन्त उपयोगी पाठ्यक्रम बनाये गये हैं।

इस विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त भारत माता की ये सन्तान नये राष्ट्रीय संस्कार से शिक्षित होकर, केवल स्व-उन्नति के पीछे न दौड़कर आत्मत्याग का मार्ग स्वीकारते हुए भारत माता को अपने पूर्व गरिमामय स्थान पर पुन: प्रतिष्ठित करेगी। इस प्रकार ये स्वामीजी द्वारा अभिलषित महिमामय भारत का स्वप्न पूर्ण करने में अपना सहयोग देंगे।

छात्रों को भारत की गरिमामय विरासत से परिचित कर उन्हें उसके प्रति संवेदनशील बनाना तथा साथ-साथ उन्हें वैज्ञानिक मनोवृत्ति और विचार पद्धति में प्रशिक्षित करना होगा। भारत की समृद्ध विरासत का अभिमान रखते हुए

विज्ञान की आधुनिक विचारधारा में प्रशिक्षित होकर हमारी युवा पीढ़ी यह सोचने पर बाध्य होगी कि भारत का कला और विज्ञान जैसी ज्ञानदायी शाखाओं में पतन क्यों हुआ है तथा वह भारत को पुन: पूर्व गरिमामय स्थान पर कैसे प्रतिष्ठित करेगी? हमारी युवा पीढ़ी भारत के पुनरुत्थान के लिए मानवीय उत्कृष्टता के सभी क्षेत्रों में उत्साह के साथ कार्य करे, यही एकमात्र उनका ध्येय होना चाहिए। शिक्षा से उनमें गरीब तथा वंचित देशबन्धुओं के प्रति संवेदना प्रकट होनी चाहिए। स्वामीजी उस शिक्षित वर्ग को विश्वासघाती कहते हैं, जिन्होंने गरीब जनता के धन से शिक्षा प्राप्त की और उन्हीं की उपेक्षा की। युवा पीढ़ी में गरीब, पददलित तथा वंचित वर्ग के प्रति कृतज्ञता की भावना जागृत करने के लिए ही स्वामीजी के पवित्र नाम पर इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई है। स्वामीजी ने आह्वान करते हुए कहा था, 'हे भाइयो ! हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। भारत का भविष्य हमारे कार्यों पर निर्भर है। देखिए भारतमाता तत्परता से प्रतीक्षा कर रही है। वह केवल सो रही है। उसे जगाइए और पहले की अपेक्षा और भी अधिक गौरवान्वित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दीजिए। ...'

इस विश्वविद्यालय के पदाधिकारी : इस विश्वविद्यालय के पदानुक्रम का प्रारम्भ कुलाधिपति से होता है। रामकृष्ण संघ के महासचिव इस विश्वविद्यालय के **कुलाधिपति** होते हैं, जिन्हें संघ के एक सह-महासचिव सहयोग करते हैं। विश्वविद्यालय की व्यवस्था कुलपति चलाते हैं, जो संघ के एक अर्हताप्राप्त संन्यासी होते हैं और जिनका चयन 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के नियमों के अनुसार होता है। विश्वविद्यालय के प्रति-कुलपति तथा सचिव रामकृष्ण संघ के एक अर्हताप्राप्त संन्यासी होते हैं। रामकृष्ण संघ की जिस शाखा में विश्वविद्यालय के दूरस्थ केन्द्र हैं, उस शाखा के सचिव/अध्यक्ष उस केन्द्र के प्रमुख होते हैं। दो वरिष्ठ प्राध्यापक बारी-बारी से विश्वविद्यालय के डीन नियुक्त किये जाते हैं। तीन प्रसिद्ध शिक्षाविदों को कुलपति द्वारा विश्वविद्यालय के सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है। एक सदस्य की नियुक्ति 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' करता है। दो वरिष्ठ अध्यापक बारी-बारी से विश्वविद्यालय के सदस्य नियुक्त किये जाते हैं। प्रायोजकों की ओर से अधिकतम चार सदस्य नियुक्त होते हैं। संघ के एक संन्यासी विश्वविद्यालय के कुलसचिव होते हैं, जो विश्वविद्यालय की व्यवस्था देखते हैं। इस विश्वविद्यालय में एक आन्तरिक गुणवत्ता प्रमाणन प्रकोष्ठ (इंटरनल क्वालिटी एसुरन्स सेल) स्थापित किया गया है, जो विश्वविद्यालय के शैक्षणिक गुणवत्ता की जाँच करता है। 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के दिशानिर्देशों के अनुसार इस विश्वविद्यालय में विभिन्न समितियाँ तथा प्रकोष्ठ स्थापित किये गये हैं, जैसे – संचालन तथा प्रबंधन मंडल, शैक्षणिक परिषद, वित्त समिति, संस्थागत आचारनीति समिति, योजना तथा पर्यवेक्षक मंडल, आन्तरिक अनुपालन समिति, क्रय समिति, अनुसन्धान समिति, शिकायत निवारण समिति, एंटी रैगिंग सेल, जाति-भेदभाव समिति, लिंगभेद संवेदीकरण प्रकोष्ठ एवं भेदभाव निवारण प्रकोष्ठ।

विश्वविद्यालय के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र (थ्रस्ट एरियाज)

इस विश्वविद्यालय को प्रारम्भ करने से पहले स्वामी विवेकानन्द द्वारा अभिप्रेत विश्वविद्यालय की कल्पना की गयी। स्वामीजी के साहित्य, पत्र, संस्मरण और व्याख्यानों में प्राप्त शिक्षा तथा विश्वविद्यालय विषयक विचारों पर इस विश्वविद्यालय की नींव रखी गयी। जिन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की ओर भारतीय शिक्षा प्रणाली की उपेक्षा की गई थी या जिन पर आज तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया था, उनका भी विशेष ध्यान इसमें रखा गया है। इस विश्वविद्यालय के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं –

१. उपेक्षित क्षेत्र (गॅप एरिया) : ये वे क्षेत्र हैं, जिन्हें परम्परागत विश्वविद्यालयों में संयुक्त नहीं किया गया था।

२. नैपुण्यता प्राप्त क्षेत्र (स्ट्रेन्थ एरिया) : ये वे क्षेत्र हैं, जिनमें रामकृष्ण मिशन ने कई दशकों से अपनी कुछ शाखाओं में विशेष दक्षता प्राप्त की है और आवश्यक संसाधन जुटाएँ हैं।

३. वंचित क्षेत्र : ये वे क्षेत्र हैं, जिनमें जन-साधारण, वंचित वर्ग, ग्रामीण तथा आदिवासियों का विशेष ध्यान रखा गया है।

रामकृष्ण संघ की अनेक शाखाएँ भारत के विविध राज्यों में कई दशकों से इन क्षेत्रों में सक्रिय एवं निपुण हैं, वे इस विश्वविद्यालय के बाह्य शाखाएँ तथा दूरस्थ परिसर (ऑफ कॅम्पस) हैं। **(क्रमशः)**

विजय या वीरगति का प्रण

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सन् १९९९ में पाकिस्तान ने भारत की कुछ चोटियों पर अपना कब्जा कर लिया था। ये चोटियाँ हजारों फुट की ऊँचाई पर थीं। इन चोटियों पर पुन: कब्जा करने के लिए मई, १९९९ में भारत और पाकिस्तान के बीच कारगिल युद्ध आरम्भ हुआ। पाकिस्तानी सेना की नॉर्दन लाइट इन्फेंट्री के सैनिकों ने तोलोलिंग चोटी पर कब्जा कर लिया था। तोलोलिंग की चोटी दोनों सेनाओं के लिए सामरिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। तोलोलिंग नियन्त्रण रेखा (एल.ओ. सी.) के बहुत समीप है। पाकिस्तानी सेना, जम्मू-कश्मीर को लेह-लद्दाख से जोड़ने वाले श्रीनगर-लेह राष्ट्रीय राजमार्ग-१ को तोलोलिंग की चोटी से निरन्तर निशाना बना रही थी। इसलिए भारतीय सेना के लिए इस चोटी पर कब्जा करना बहुत आवश्यक था।

तोलोलिंग की चोटी को अपने कब्जे में कर लेना इतना आसान नहीं था, क्योंकि तोलोलिंग की हजारों फुट ऊँची चोटी पर पाकिस्तान के सैनिकों तथा घुसपैठियों की एक कम्पनी तैनात थी। जिसके कारण उनकी सेना की स्थिति मजबूत थी और वे ऊँचाई का लाभ उठाकर भारतीय सेना पर आसानी से दृष्टि रखने तथा हमला करने की स्थिति में थे।

२० मई, १९९९ को भारतीय सेना की १८-ग्रेनेडियर्स को तोलोलिंग पर वापस कब्जा करने का उत्तरदायित्व दिया गया। सेना के रणबाँकुरों ने शून्य से भी न्यूनतम तापमान और विपरीत परिस्थितियों में शौर्य तथा बहादुरी से अपने प्राणों की परवाह न करते हुए तोलोलिंग चोटी की ओर चढ़ाई प्रारम्भ की। लेकिन इस अभियान में १८ ग्रेनेडियर्स के २५ जवानों ने वीरगति प्राप्त की। इसमें मेजर राजेश अधिकारी भी शहीद हुए। उसके बाद खुशाल ठाकुर और लेफ्टिनेंट कर्नल विश्वनाथन ने मोर्चा संभाला। भारतीय सैनिकों ने २ और ३ जून, १९९९ को योजनाबद्ध तरीके से हमला किया लेकिन सेना को काफी क्षति हुई। उसके बाद २-राजपूताना राइफल्स के मेजर विवेक गुप्ता ९० सैनिकों के साथ अन्तिम हमले के लिए अग्रसर हुए। प्वाइंट ४९५० पर सेना के जवान कब्जा करने वाले ही थे कि अचानक १२ जून, १९९९ को पाकिस्तान सैनिकों ने अन्धाधुन्ध गोलीबारी प्रारम्भ कर दी। लेकिन सेना के जवान अद्भुत पराक्रम, वीरता तथा अदम्य साहस के साथ शत्रु सेना पर हावी हुए। तोलोलिंग संघर्ष २४ दिन तक दिन-रात चलता रहा। तोलोलिंग पर कब्जा करने के तीन प्रयास असफल हुए। उसके बाद जनरल मलिक ने २ जून, १९९९ को सेना के जवानों से तोलोलिंग पर कब्जा करने के लिए स्वेच्छा से आगे आकर अपनी योजना बताने के लिए सैनिक दरबार लगाया। उस दरबार में नायक दिगेन्द्र सिंह ने अपनी योजना बताई और जीत का आश्वासन दिया। नायक दिगेन्द्र सिंह ने पाकिस्तान सेना के मेजर का सिर धड़ से अलग कर दिया था। १३ जून, १९९९ को १८-ग्रेनेडियर्स तथा २-राजपूताना राइफल्स ने तोलोलिंग

तोलोलिंग चोटी पर भारतीय तिरंगा

चोटी पर भारतीय तिरंगे को फहरा कर कारगिल युद्ध की पहली विजय प्राप्त की थी। देश के वीरों ने अपने प्राणों

शेष भाग पृष्ठ ३१० पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७९)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज, थोड़ी-सी बात करूँगा। बिल्कुल चुप नहीं रहूँगा। हमलोग पुराने दिनों की जो कहानी सुन रहे थे ...

महाराज – दूर ! दूर !

– उसी कहानी को पूरा कर दीजिए। थोड़ी-सी ही बाकी है महाराज ! शिलांग, चेरापूंजी का प्रसंग तो हो गया है। उसके बाद आप जो राजकोट जायेंगे, वहाँ के बारे में थोड़ा कुछ कहिए न। इस प्रसंग को कहने से ही कहानी समाप्त हो जायेगी।

महाराज – राजकोट? यहाँ (बेलूड़ मठ) से रेलगाड़ी में बैठा और राजकोट में उतर गया। बस, हो गया। (सभी हँसते हैं)

– महाराज ! चेरापूंजी से क्यों चले आये? (न्यासीवृन्द) बुलाये थे क्या? क्यों बुलाये थे?

महाराज – चेरापूंजी से चला आया, क्योंकि वहाँ साढ़े नौ वर्ष था। तब माधवानन्द स्वामी महासचिव थे। आठ वर्ष रहने के बाद मैंने उन्हें कहा। हमलोगों का एक नियम था कि महन्त एक स्थान पर आठ वर्ष से अधिक नहीं रहेगा।

– क्या ऐसा नियम था महाराज?

महाराज – हाँ, पहले था। बहुत पहले नियम था – सामान्य साधु ३ वर्ष और महन्त पाँच वर्ष एक स्थान पर रह सकता है। उसके बाद वह नियम नहीं चला। तब उसे बदला गया – सामान्य साधु पाँच वर्ष और महन्त आठ वर्ष तक एक स्थान पर रह सकता है। मैंने आठ वर्ष होने पर बता दिया – शिलांग, चेरापूंजी स्थान आकर्षक है, यहाँ कदाचित् अन्य लोग भी आना चाहेंगे। अत: मुझे स्थानान्तरित कर सकते हैं। उन्होंने कहा – अच्छा, देखता हूँ। तब मैं रुष्ट नहीं हुआ। तत्पश्चात् डेढ़ वर्ष बीत गया। साढ़े नौ वर्ष तक वहाँ रहने के बाद माधवानन्द स्वामी ने कहा – देखो, राजकोट में हमलोगों को आदमी की आवश्यकता है। तुम राजकोट जाओगे क्या? मैंने सोचा – मैं यमालय में भी जाने को तत्पर हूँ। (हँसी) ऐसा कहा नहीं। जो भी हो, मैंने कहा – जाऊँगा। उनलोगों ने मेरे बदले किसी महाराज को भेजने में विलम्ब किया। नौ वर्ष होने की बात थी, और आधा वर्ष बीत गया। उसके बाद एक संन्यासी आये। तब मैं राजकोट चला गया। माने बेलूड़ मठ गया, उसके बाद राजकोट गया। मठ में आकर पूछा – राजकोट में क्या समस्या है, कहिए तो ! क्योंकि समस्या छोड़कर तो आपलोग मुझे बुलाएँगे नहीं ! उनलोगों ने कहा – समस्या यह है कि वहाँ की स्थिति कुछ समझ नहीं पा रहे हैं। भयानक पत्र आ रहे हैं। तुम फाइल पढ़कर देखो। मैंने सोचा – फाइल पढ़ने से तो काम नहीं होगा। जो होना है, सो होगा। यही सोचकर चला गया।

– क्या मठ के साधु लोग डरवाये नहीं?

महाराज – बहुत डरवाये। भयंकर डरवाये। किसी ने कहा – तुम किस साहस से राजकोट जा रहे हो? वहाँ तो बड़ी दुर्दशा है ! बहुत उधार देना है ! मैंने कहा – मुझमें कोई साहस नहीं है। किन्तु किसी एक को तो जाना ही होगा। इसीलिए मैं जा रहा हूँ। वहाँ जाकर मैं कितना कर पाऊँगा, वह भी नहीं जानता। जितना हो सकेगा, करूँगा। यही बात है। सीधी-सी बात है। निर्मल महाराज (स्वामी माधवानन्द जी) को सीधी बात प्रिय थी। जो भी हो, वहाँ जाकर देखा, राजकोट में उस समय १५,०००/- रुपया ऋण देना है ! अभी के लिए पन्द्रह हजार वैसा कुछ नहीं है। किन्तु उस समय १५ हजार ऋण चुकाना माने बड़ी समस्या थी। लोग आ रहे हैं, कह रहे हैं – आपलोगों के पास बहुत-सी लोहे की खटिया हैं, इन सबका कितना मूल्य है? उन्हें बेचेंगे क्या? मैंने कहा – बेचने की तो कोई बात नहीं हुई है।

उनलोगों ने कहा – हमलोगों ने सुना है कि आश्रम नहीं रहेगा। मैंने कहा – मैंने तो ऐसा नहीं सुना है। हमलोग जहाँ बैठते हैं, वहाँ से सहजता से नहीं उठते हैं। (सभी हँसते हैं) उसके बाद उन सबने अधिक कुछ नहीं कहा। गुजराती तो! व्यापार करने आते हैं। सोच रहे हैं, इसी समय एक दाव मारकर खाटियाओं को यदि ले सकूँ। तत्पश्चात देखा – आँख में आँसू हैं। ज... स्वामी परामर्श दे रहे हैं। उन्होंने तो मुझे गाय-चरवाहा (गँवार) समझा। कह रहे हैं – यहाँ की स्थिति

जानते हैं? मैंने कहा – जानने का प्रयास कर रहा हूँ। एक काठ का टुकड़ा एक स्थान पर पड़ा है। उसे दिखाकर उन्होंने कहा – जानते हैं, इसका कितना मूल्य है? मैंने कहा – मैं मूल्य नहीं जानता। उन्होंने कहा – ये सब मूल्यवान वस्तुएँ हैं। मैंने कहा – हाँ, होगा। उसी समय एक व्यक्ति ने दस हजार रुपए उधार दिये। उससे तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति की गयी। उसी समय वहाँ उत्सव था। उस उत्सव में कुछ रुपये बाहर के लोगों ने संग्रह किये थे। कुछ रुपये बच गये थे, वे रुपये मेरे हाथ में मिले। लगभग बारह सौ रुपये थे। जो भी हो, इस रुपये से उस समय जो ऋण थे, उसे थोड़ा-थोड़ा चुकाया गया। इसी बीच एक सेठ ने हमारे पहले के स्वामीजी को पाँच हजार रुपये उधार दिये थे। उसने सोचा – पहले के स्वामीजी तो चले गये हैं, तब तो हमारे पाँच हजार रुपए डूब जाएँगे। इसलिए वह एक महाराज को कहने लगा – मेरा पाँच हजार रुपया दीजिए। वे बार-बार मुझे कहने लगे। उसका पाँच हजार रुपया दे दिया गया। दस हजार रुपये में से पाँच हजार रुपये तो चले गये। मैं तो चन्दा जुटा नहीं पाता था। अन्त तक यह अभ्यास मेरा नहीं हुआ। अभी भी चन्दा नहीं माँग सकता।

– ऐसे ही जो आ जाये, अब चन्दा नहीं माँगना पड़ता है महाराज !

महाराज – तुम जो बोल रहे हो। यहाँ तो मठ से भोजन पाता हूँ। (हँसी)

– आज यहीं तक रहने दीजिए महाराज। न हो, तो कल से चन्दा लेना आरम्भ कीजियेगा।

महाराज – नहीं, नहीं। चन्दा माँग नहीं सकूँगा, बाबा! मैंने कहा था – मैं तीन काम नहीं कर सकूँगा। पहला है चन्दा माँगना, दूसरा है लड़कों को पढ़ाना और तीसरा है औषधि देना। ये तीन काम मैं नहीं कर सकूँगा। एक साधु ने कहा – यही तीन काम तो मिशन में है। यदि ये तीन काम तुम नहीं करोगे, तो करोगे क्या? वस्तुत: अन्त में ये तीनों कार्य, सब कुछ ही मुझे करना पड़ा। चेरापूंजी में स्कूल था। शिलांग में चन्दा माँगने जाता था। पहाड़ के गाँव-गाँव में दवाई की पेटी लेकर होम्योपैथ की कितनी दवायें देनी पड़ीं। अध्यापक के अभाव में छात्रों को पढ़ाना तो मेरा एक बड़ा काम था। राजकोट में छात्रावास था। वहाँ के बच्चों को पढ़ाना पड़ता था। ठाकुर ने गला पकड़कर सब प्रकार का कार्य करा लिया है।

प्रश्न – महाराज ! आप राजकोट में गये। ज ... स्वामी आपको बहुत परामर्श देते थे। आश्रम बिक जायेगा, इसलिए सेठ लोग आने लगे। उसके बाद क्या हुआ?

महाराज – आश्रम बेचना नहीं पड़ा। ईश्वर की कृपा से एक-दो लोग आये, जो चन्दा-संग्रह करने में निपुण थे। इसीलिए रुपये का अभाव नहीं हुआ।

– साधुओं में या भक्तों में?

महाराज – साधुओं में भूतेशानन्द वहाँ गया, लेकिन असफल हो गया। अर्थात् वह रुपये का व्यापार नहीं कर सका। राजकोट में पेड़ नहीं, पानी नहीं है, मिट्टी नहीं है। वहाँ मिट्टी खरीदनी पड़ती है। दूर कहीं जाने पर एक-दो वृक्ष दिखाई पड़ता है। मरुभूमि सदृश वह एक स्थान है। धीरे-धीरे वहाँ सब कुछ हुआ। यही हुआ राजकोट का वर्णन ...।

– छात्रावास-भवन क्या आपके समय बना था?

महाराज – हाँ, मेरे रहते ही बना था। (हँसी)

– डिस्पेन्सरी.. भवन क्या आपके समय बना?

महाराज – वह भवन अभी तोड़ दिया गया है। अभी डिस्पेन्सरी बहुत दूर चली गयी है।

– समीप की जमीन डिस्पेन्सरी के लिए खरीदी गयी थी, क्या वह आपके समय खरीदी गयी थी?

महाराज – अभी तो कहा, मेरे रहते ही ली गयी थी।

प्रश्न – जब आप गुजरात में थे, तब क्या वहाँ के राजाओं से आपका परिचय था?

महाराज – हाँ, बहुत था।

– कहाँ के महाराजा से था?

महाराज – मोरबी, जामनगर, पोरबन्दर के नवाब के साथ। जूनागढ़ के दीवान से परिचय था। उसके बाद भावनगर, कितना नगर बताऊँगा।

– किसी के घर या राजमहल में गये हैं महाराज?

महाराज – हाँ, किसी-किसी के घर भोजन किया हूँ।

– व्याख्यान दिये हैं क्या?

महाराज – व्याख्यान नहीं दिया। किन्तु अनेक वार्तालाप हुआ है।

– राजाओं के साथ की एक-दो घटनाएँ बताइये न !

महाराज – कह रहा हूँ, कह रहा हूँ। जामनगर के महाराज थे। उनके भवन में निमन्त्रण में गया हूँ। एक साथ

भोजन करने बैठा हूँ। हमलोग निरामिष खा रहे हैं और वे लोग तो छप्पन-भोग उड़ा रहे हैं। वे बार-बार कह रहे हैं– डाक्टर मुझे खाने नहीं देते, खाना बन्द कर दिये हैं। उधर एक-पर-एक बड़ी-बड़ी मछली का टुकड़ा खाये जा रहे हैं।

– उनलोगों ने ही आपलोगों को निरामिष खाने को दिया?

महाराज – हाँ। तब क्या वे लोग साधु को आमिष खाने को देंगे?

– केवल राजा लोग ही आमिष खाते थे कि दूसरे लोग भी खाते थे?

महाराज – छुपा के, छुपा के कौन नहीं खाता है? काशी में एक बार ऐसी ही घटना घटी थी। एक व्यक्ति दूसरे को पूछ रहा है – क्या खाने की इच्छा होती है, बोलो। वह कह रहा है – महाराज, जो बंगाली लोग खाता है, वह थोड़ा-सा लेना है। बंगाली लोग खाता है ! क्या? मछली? आपलोग मछली खाते हैं? वह कह रहा है – छुपा के, छुपा के कौन नहीं खाता है? एक पंडितजी थे। उनका स्वभाव था, पूरी मछली मुँह में डाल देते और काँटा बाहर निकाल देते। किन्तु हमलोग ऐसा नहीं कर सकेंगे।

– दूसरे किस राजा से भेंट हुई थी?

महाराज – हाँ। एक राजा ने कहा था, स्वामीजी को कहना कि वे तो मेरे पास केवल रुपया के लिए आते हैं। मैंने कहा – उनको कह देना, रुपया के अतिरिक्त उनके पास है क्या?

– ये भी राजा थे महाराज?

महाराज – हाँ, जामनगर के राजा थे।

– और कहाँ-कहाँ जाते थे महाराज?

महाराज – रुपये के लिए सब जगह जाता था। भावनगर के महाराज कहते – यहाँ आश्रम बनाइये। मैं सब कुछ दूँगा। क्या मुझे दूसरा काम नहीं था कि मैं भावनगर में आश्रम बनाऊँगा।

– महाराज, अच्छा ही तो प्रस्ताव था। भावनगर में आश्रम होता।

महाराज – अच्छा क्या होता ! मुझे तो मठ में रहना होगा !

– राजकोट आश्रम में क्या राजा लोग आते थे?

महाराज – हाँ

– क्या वहाँ बहुत से राजा थे?

महाराज – प्राय: दो सौ स्टेट था।

– क्या सभी जमींदार थे?

महाराज – जमींदार, किन्तु सभी बड़े जमींदार नहीं थे। छोटे-छोटे जमींदार भी थे। एक बड़ी विचित्र बात थी कि वहाँ सभी झोपड़ियाँ थी और उसके बीच राजाओं का एक राजमहल था। देखने में बहुत खराब लगता था। इसी राजमहल में बैठकर प्रजा का शोषण करते थे।

– स्वाधीनता के बाद भी कुछ वर्ष वह सब था क्या?

महाराज – स्वाधीनता के पहले से ही अंग्रेज उनलोगों का नियन्त्रण करते थे।

– उसके बाद भारत-भूखण्ड में आ गया?

महाराज – हाँ, स्वाधीनता के बाद वल्लभ भाई पटेल ने राजाओं को शान्त कर दिया। सभी राज्यों को मिला दिया।

– सरकार से राजाओं को कुछ भत्ता मिलता था?

महाराज – कुछ थोड़ा वेतन जैसे था।

– क्या राजकोट के भक्त मन्दिर बनाने को कहते थे?

महाराज – बोलने पर तो रुपया देना होगा। मेरे पास मन्दिर के लिए केवल दो लाख रुपये ही थे। रख दिया। उससे अधिक मेरी क्षमता नहीं थी। मेरे बाद जो गये, उन्होंने तो कई लाख का मन्दिर बनवा दिया।

– आपके माँगने पर भी लोग देते।

महाराज – मैं अधिक माँगता नहीं था।

– मन्दिर-निर्माण का प्रस्ताव क्या आपके आने के बाद हुआ?

महाराज – नया मन्दिर मेरे बाद हुआ। मेरे रहते होता नहीं।

– कुछ कहा नहीं जा सकता महाराज।

महाराज – अभी तो कुछ नहीं कहा जा सकता। मैं पहले की बात कर रहा हूँ। इतने लाख रुपये का मन्दिर बनाना तो मेरे सामर्थ्य की बात नहीं थी।

– रुपये का मूल्य भी तो क्या हो गया है। रुपये के लिए मुम्बई की ओर आना पड़ता क्या?

महाराज – हाँ। मुम्बई आना पड़ता। **(क्रमश:)**

स्वाधीनता आन्दोलन की क्रान्ति ज्वालाएँ

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

प्रीतिलता वादेदार

प्रीतिलता वादेदार चटगाँव के एक ऐसे परिवार की लड़की थी, जिसमें लड़कियों को उच्च शिक्षा देना अच्छा नहीं समझा जाता था। इसीलिये प्रीतिलता की शिक्षा की उपेक्षा की गई। उसके भाइयों को घर पर पढ़ाने के लिए एक अध्यापक की नियुक्ति की गई थी। जब अध्यापकजी उसके भाइयों को पढ़ाते, तो वह बैठकर सुना करती थी। वह सुन-सुनकर ही पढ़ गई और पढ़ाई में अपने भाइयों को मात देने लगी। उसकी कुशाग्र बुद्धि देखकर उसकी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। देखते ही देखते उसने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् प्रीतिलता ने विश्वविद्यालय से स्नातक कर लिया। स्नातक कर लेने के पश्चात् प्रीतिलता वादेदार चटगाँव के नंदन कानन उच्च विद्यालय की प्रधानाध्यापिका बन गई।

क्रान्तिकारियों और उनके परिवार वालों पर हो रहे अत्याचारों ने प्रीतिलता को विद्रोहिणी बन दिया। कुछ दिन तो वह गोपनीय रूप से क्रान्ति-कार्य करती रही, पर शीघ्र ही घर छोड़कर वह 'इंडियन रिपब्लिकन आर्मी' की महिला सैनिक बन गई।

वह अपने नेता सूर्य सेन के साथ १४ सितम्बर, १९३२ को घलघाट में पुलिस द्वारा घेर ली गई थी। सूर्य सेन और प्रीतिलता वादेदार बचकर भागने में सफल हो गए थे। प्रीतिलता शहादत के लिए अधीर हो रही थी।

शैलेश्वर चक्रवर्ती की निष्क्रियता के कारण चटगाँव के यूरोपियन क्लब पर आक्रमण नहीं हो सका, तो प्रीतिलता ने उस योजना को पूरा करने का दायित्व अपने ऊपर लिया।

२४ सितम्बर, १९३२ की रात थी। रात्रि के साढ़े दस बजे थे। यूरोपियन क्लब के चालीस सदस्य क्लब में आमोद-प्रमोद में व्यस्त थे। इसी समय प्रीतिलता वादेदार के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों का एक दल वहाँ पहुँचा। क्लब की खुली खिड़की में से एक बम फेंका गया, जिसके विस्फोट से सभी लोग आतंकित हो गए। दो बम और फेंके गए तथा गोलियाँ भी चलाई गईं। एक वृद्ध-अंग्रेज की तत्काल मृत्यु हो गई और कुछ अन्य लोग घायल हो गए। वातावरण चीखों और कराहों से गूँज उठा। वहाँ अधिक देर तक रुकना सम्भव नहीं था। कुछ देर तक धूम-धड़ाका मचाकर क्रान्तिकारियों का दल नौ दो ग्यारह हो गया।

प्रीतिलता वादेदार

थोड़ी देर बाद जब पुलिस वहाँ पहुँची, तो उसने बारह घायलों को अस्पताल में पहुँचाया। आस-पास खोज करने पर पाया गया कि आक्रमणकारियों में से एक की लाश वहाँ पड़ी थी। वह एक लड़की की लाश थी, जो सैनिक वर्दी पहनी हुई थी। उसका नाम प्रीतिलता वादेदार था। उसने जहर खाकर आत्मबलिदान का पथ अपनाया था।

रोहिणी बरुआ

रोहिणी बरुआ को जेल में इतनी यातनाएँ दी गईं कि वह सोचने लगा कि क्या मैं आत्महत्या कर लूँ। आत्महत्या का विचार उसके मन में उठा अवश्य, पर वह विचार टिक न सका। जो विचार उसके मन में स्थिर हुआ, वह यह कि आत्महत्या करने के स्थान पर उसकी हत्या क्यों न की जाए, जिसने केवल

संदेह पर ही मुझे गिरफ्तार करके जेल में डाल रखा है और बहुत गंदे स्थान पर रखकर मुझे प्रतिदिन नई-नई यातनाएँ दे रहा है।

पुलिस के जो लोग क्रान्तिकारियों के दमन के लिए बदनाम थे, उनमें सैयद इरशाद अली प्रमुख था। इरशाद अली फरीदपुर के ग्वालंदा थाने का थानेदार था। उसने ही केवल संदेह मात्र पर अठारह वर्ष के किशोर रोहिणी बरुआ को गिरफ्तार करके बहुत ही गंदे स्थान पर रखा हुआ था और उसे तंग करने के लिए नई-नई यातनाओं का आविष्कार करता रहता था।

एक दिन हवालातियों को थानेदार सफाई का कुछ काम बता रहा था। मिट्टी इधर से उधर पटकने के लिए रोहिणी बरुआ ने बेलचे का अच्छा उपयोग किया। उसने बहुत ही फूर्ति से कस-कसकर बेलचे के तीन प्रहार थानेदार की गर्दन पर किए और इरशाद अली की गर्दन उसके धड़ से लगभग अलग हो गई। यह घटना १५ जून, १९३५ को सुबह आठ बजे हुई। इरशाद अली केवल कुछ क्षण ही जी सका।

विशेष ट्रिब्यूनल के समक्ष रोहिणी बरुआ का मुकदमा पेश किया गया। १८ दिसम्बर, १९३५ को फरीदपुर जेल में रोहिणी बरूआ को फाँसी के फंदे पर झूला दिया गया। उसकी लाश उसके आत्मीय जनों को नहीं दी गई।

वीणा दास

कलकत्ता में एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री वेणी माधव दास अपने समय के बहुत ही सम्मानित और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस को भी पढ़ाया था। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने स्वीकार किया है कि उनके चरित्र-निर्माण में उनके गुरु श्री वेणीमाधव दास का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

वीणा दास

श्री वेणीमाधव दास की दो पुत्रियाँ थीं। श्री वेणीमाधव दास की छोटी पुत्री का नाम वीणा था। वह अपनी बड़ी बहन कल्याणी देवी की भाँति ही क्रान्ति के पथ पर अग्रसर हो गई। उन दिनों चटगाँव, ढाका और कई स्थानों पर अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों का निर्ममता से दमन किया था और कई क्रान्तिकारियों को मौत के घाट उतारा था। उन लोगों ने महिलाओं को भी कई प्रकार से अपमानित किया था। वीणा दास यह सब देखकर तिलमिला उठी थी और उसने इन अत्याचारों का बदला लेने का संकल्प कर लिया था।

क्रान्तिकारी दल की सदस्या होने के साथ-ही-साथ वीणा दास ने असहयोग आन्दोलन में खुलकर भाग लिया और उसे जेल का उपहार भी मिला।

जेल से छूटने पर वीणा दास को बदला निकालने का अवसर शीघ्र ही मिल गया। ६ फरवरी, १९३२ को विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में बंगाल के गवर्नर मि. स्टेनली जैक्सन मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित होकर स्नातकों को उपाधियाँ वितरित करनेवाले थे। वीणा दास को बी.ए. (ऑनर्स) का उपाधि पत्र लेना था। उसने निश्चय कर डाला कि जिस समय गवर्नर महोदय उसे उपाधि पत्र देंगे, वह उन्हें दूसरी दुनिया में जाने के लिए पत्र दे देगी।

६ फरवरी, १९३२ को दीक्षान्त समारोह प्रारम्भ हुआ। जब उपाधि पत्र लेने का वीणा दास का क्रम आया, तो वह मुस्कराती हुई गवर्नर मि. स्टेनली जैक्सन के सामने पहुँची और अपने गाउन में छिपा हुआ रिवॉल्वर निकालकर गवर्नर पर गोली चला दी। उसकी गोली सही निशाने पर नहीं लगी। उसकी गोली से विश्वविद्यालय के एक अधिकारी श्री दिनेश चन्द्र सेन घायल हो गए। वीणा दास ने दूसरी गोली चलाने के लिये हाथ उठाया ही था कि कर्नल सुहरावर्दी ने वीणा दास का हाथ पकड़ लिया। वह गिरफ्तार कर ली गई। समस्त भारत और विश्व में एक लड़की के इस साहस के समाचार फैल गए।

एक बंद कमरे को अदालत का रूप देकर न्यायिक कार्यवाही प्रारम्भ हो गई।

बचाव पक्ष के वकीलों के अतिरिक्त वीणा दास ने स्वयं भी अदालत में एक लिखित बयान पढ़ा।

"मैं स्वीकार करती हूँ कि पिछले समारोह के अवसर पर सीनेट हाउस में मैंने गवर्नर पर गोली चलाई थी। इसका पूर्ण उत्तरदायित्व केवल मुझ पर ही है। मैंने अपनी आँखों के सामने अपनी बहनों को अपमानित होते हुए देखा है। इस जीवन से मर जाना ही बेहतर था, लेकिन जब मरना ही था, तो

शान से क्यों न मरती ! मैंने उस तानाशाह सरकार को कुछ सबक देकर मरने का निश्चय किया, जिसने मेरे देश को परतन्त्र कर रखा है।

''मैं नित्य ही यह सोचा करती थी कि क्या ऐसे देश में रहा जा सकता है, जो गुलामी की जंजीरों में बुरी तरह जकड़ा हो! क्या यह सम्भव नहीं कि इस तानाशाही को चुनौती दी जाए! क्या यह उचित नहीं होगा कि भारत की एक बेटी अंग्रेज की जान लेकर सोए हुए भारत को जगा दे !''

''सरकार जनता के मन में उठी स्वाधीनता की भावना को दबा देना चाहती है। मिदनापुर, हिजली और चटगाँव में जो अत्याचार किए गए थे, वे इतने घिनौने थे कि मैं उन्हें अपने मन से निकाल नहीं सकी। हजारों लोगों को जेलों में यातनाएँ भुगतनी पड़ रही होंगी और उनके माता-पिता तड़प रहे होंगे। सरकार द्वारा किए जानेवाले इन सारे अत्याचारों को जन साधारण को सुनाने और उन्हें गुलामी की नींद से जगाने के लिए मुझे यही एकमात्र साधन दिखाई दिया।

''मैं सभी को विश्वास दिला देना चाहती हूँ कि इस धरती पर न मुझे किसी से घृणा है और न द्वेष। मेरे हृदय में सर स्टेनली के प्रति भी कोई घृणा और द्वेष नहीं है। मेरे लिए वे मेरे पिता के समान हैं। लेडी जैक्सन एक नारी हैं। वे भी मेरे लिए माता के समान पूज्य हैं। लेकिन बंगाल गवर्नर मेरा कोई अपना नहीं है। वह मेरा और मेरे देश का दुश्मन है। वह एक विदेशी सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है, ऐसी सत्ता, जिसने मेरे देश की तीस करोड़ जनता को दासता की जंजीरों में जकड़ रखा है और उन्हें अपाहिज बना रखा है।

''मेरा उद्देश्य सफल हो गया है। मेरे अशान्त मन को शान्ति मिली है। मैं अपने देशवासियों का ध्यान उन पर किए जानेवाले सारे कष्टों की ओर आकृष्ट कराना चाहती थी। मेरा कदम पूरा हो गया है।''

वीणा दास पर चले मुकदमे के निर्णय ने उसे तेरह वर्षों के कठोर कारावास का दंड दिया। जब वह सन् १९३९ में जेल से छूटी, तो 'भारत छोड़ो आंदोलन' में फिर उसे तीन वर्ष कारावास का दंड दिया गया। ○○○

पृष्ठ ३०४ का शेष भाग

को न्योछावर कर तोलोलिंग पर पुन: कब्जा कर लिया। इस चोटी पर कब्जा करने के बाद कारगिल युद्ध में एक नया मोड़ आ गया और युद्ध की दिशा ही बदल गयी।

यद्यपि सेना के रणबाँकुरों को बड़ी संख्या में अपना सर्वस्व बलिदान तथा प्राणों की आहुति देनी पड़ी, लेकिन भारतीय सेना ने कारगिल युद्ध की निर्णायक एवं रणनीतिक तथा सामरिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण कड़ी तोलोलिंग की चोटी पर विजय का पताका फहराया। तोलोलिंग चोटी पर विजय का परचम फहराने के लिए सेना के कई अधिकारियों तथा सैनिकों ने भी अपने जीवन का सर्वोच्च बलिदान दिया। लेफ्टिनेंट कर्नल विश्वनाथन को मरोणपरान्त वीर चक्र से तथा राजपूताना राइफल्स के मेजर आचार्य पद्मपाणी को महावीर चक्र से सम्मानित किया गया। १८ ग्रेनेडियर्स के कमांडिग ऑफिसर ब्रिगेडियर खुशाल ठाकुर को युद्ध सेवा मेडल दिया गया।

पाकिस्तानी सेना तथा घुसपैठियों को अपनी मातृभूमि से खदेड़ने के लिए भारतीय सेना के ५२७ वीर बहादुर सैनिक अपने प्राणों की आहुति देकर वीरगति को प्राप्त हुए तथा १३६३ वीर जवानों ने घायल होते हुए भी युद्ध में विजय प्राप्त करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तोलोलिंग पर कब्जा करने के लिए जो युद्ध का अभियान छेड़ा गया उस अभियान में भारतीय सौनिकों ने विजय या वीरगति का प्रण लिया था।

भारतीय सेना के जवानों ने अद्भुत पराक्रम, अतुलनीय वीरता, अदम्य साहस, अनुकरणीय कर्तव्य निष्ठा का निर्वहण तथा अपने प्राणों की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने जीवन का सर्वोच्च बलिदान देकर तोलोलिंग चोटी जैसी विजय की निर्णायक एवं महत्त्वपूर्ण चोटी पर विजय फतह की तथा भारतीय तिरंगा फहरा कर गौरवशाली ऐतिहासिक वीरता का परिचय देते हुए भारत की आन-बान और शान की रक्षा की। भारतीय सेना तथा वीर साहसिक रणबाँकुरों को शत शत नमन। ○○○

करुणा का विस्तार कर सार्थक मनुष्य बनें

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

प्रसिद्ध कवि नरोत्तमदास की चर्चित रचना है, सुदामाचरित। उसकी कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं :

देख सुदामा की दीन दसा,
करुना करि कै करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं
नैनन के जल सों पग धोए।

जब सुदामा अपने मित्र कृष्ण से मिलने द्वारका पहुँचे, तो उनकी विपन्नता और कृश काया को देखकर करुणा-सागर श्रीकृष्ण स्वयं, करुणार्द्र होकर रोने लगे। उनके चरण-प्रक्षालन के लिए परात के पानी को हाथ से स्पर्श नहीं करना पड़ा, क्योंकि कृष्ण की आँखों से इतने आँसू गिरे कि सुदामा के पैर धुल गए। यदि साहित्य की दृष्टि से देखें, तो ये करुण रस का अनुपम उदाहरण है। करुण रस का स्थायीभाव शोक होता है अर्थात् मन में शोक के कारण करुण रस की उत्पत्ति होती है। हिन्दी ही नहीं, समस्त भारतीय साहित्य इस प्रकार की रचनाओं से भरा हुआ है। करुणा मनुष्य के हृदय को किस प्रकार उदात्त बना देती है, आदि कवि वाल्मीकि इसके प्रखर उदाहरण हैं। कहा जाता है कि एक बार वाल्मीकि ने देखा कि एक बहेलिए ने प्रेमरत क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से नर पक्षी का वध कर दिया, जिसे देखकर मादा जोर-जोर से विलाप करने लगी। इस विलाप को सुनकर वाल्मीकि का हृदय रो पड़ा। वे अत्यन्त व्यथित व आहत हो उठे और अचानक उनके मुख से निकला –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

अरे बहेलिए, तूने कामविमोहित मैथुनरत क्रौंच पक्षी को मारा है, अतः तुझे कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं मिलेगी। इस घटना से वाल्मीकि का कवित्व जाग उठा। उन्होंने संसार की महानतम कृति रामायण की रचना की। इन सबका श्रेय उनमें उत्पन्न करुणा को ही जाता है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत की कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इसी ओर संकेत कर रही हैं :

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अंजान।

इसी सन्दर्भ में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की एक कविता भिक्षुक का स्मरण हो रहा है :

वह आता –
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को-भूख मिटाने को,
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता,
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

क्या ये मात्र कुछ शब्द हैं? नहीं, ये केवल शब्द नहीं हैं। एक भिक्षुक और उसके बच्चों की दुर्दशा, पीड़ा को देखकर कवि के हृदय में उपजी करुणा का चित्रांकन हैं ये पंक्तियाँ। करुणा की इससे मार्मिक अभिव्यक्ति क्या होगी?

अब थोड़ा करुणा के अर्थ पर विचार करते हैं। जब हम दूसरों की पीड़ा को देखते हैं, तो हमारे अन्दर भी पीड़ा का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह भाव हमें दूसरों की पीड़ा को दूर करने की प्रेरणा देता है। दूसरों के दुख को देखकर दुखी होना और उसको दूर करने के लिए उद्यत हो जाना ही वास्तविक करुणा है। यदि दूसरों की पीड़ा को देखकर हमारे अन्दर पीड़ा के भाव तो उत्पन्न होते हैं, लेकिन तत्क्षण विलीन हो जाते हैं और हम उसके विषय में सोचते ही नहीं,

तो वह कैसी करुणा? जब हमारी संवेदना अथवा सहवेदना कुछ करने के लिए उद्यत करती है, तभी हम करुण बन पाते हैं, अन्यथा वह संवेदना अथवा सहवेदना दिखावा मात्र है।

अन्य क्षेत्रों की तरह करुणा के क्षेत्र में भी हमारे मानदण्ड हमारी सुविधानुसार अलग-अलग होते हैं। अपने निकटस्थ व्यक्तियों अथवा स्वजनों के लिए दुख में ही नहीं, दुख की कल्पना मात्र से भी हम करुणार्द्र हो उठते हैं, जो स्वाभाविक है। कहने का तात्पर्य यह है कि दूसरों के वास्तविक दुख और अपने स्वजनों के दुख की कल्पना से दुखी होना करुणा ही कहलाता है।

आज समाज में करुणा नामक तत्त्व कम होता जा रहा है। हमारी करुणा दिखावा बनकर रह गई है। यद्यपि हम अपनों के लिए चिन्तित अथवा व्याकुल हो उठते हैं, लेकिन समाज के लिए हमारी चिन्ता का स्तर निरन्तर दुर्बल होता जा रहा है। किसी व्यक्ति को पीड़ा में देखकर हम उसकी मदद करने की बजाय चुपचाप खड़े तमाशा देखना अधिक उचित समझते हैं। अति तो तब हो जाती है, जब हम किसी पीड़ित की सहायता करने की बजाय उस घटना का वीडियो बनाने लगते हैं।

पिछले दिनों दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में ओलावृष्टि हुई। कई स्थानों पर बहुत बड़े-बड़े और पर्याप्त मात्रा में ओले गिरे। कई समाचार पत्रों ने लिखा कि दिल्ली में बर्फबारी अथवा दिल्ली शिमला बना। दिल्ली में शिमला का आनन्द। लोग भी धड़ाधड़ ओलावृष्टि के वीडियो बनाकर इधर से उधर भेज रहे हैं। उनके आनन्द की सीमा नहीं। वास्तव में उन्हें ओलावृष्टि और बर्फबारी में अन्तर ज्ञात नहीं है। ये दोनों अलग-अलग एवं परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं। बर्फबारी पर्वतीय जीवन और फसलों के लिए अनिवार्य है, लेकिन ओलावृष्टि चाहे पहाड़ों पर हो अथवा मैदानी भागों में बर्बादी लाती है। अब ऐसे विद्वान लोग करुणा को किस रूप में लेंगे, कहना कठिन है।

एक पक्षी के वध और उसकी मादा के क्रन्दन पर वाल्मीकि का अन्त:करण द्रवित हो जाता है। आज समाज में विभिन्न वर्गों पर हो रहे अत्याचार और पीड़ितों, असहायों को देखकर हमारा हृदय द्रवित नहीं होता। देश में कई स्थानों पर बच्चियों, महिलाओं, गरीबों के साथ हो रहे अत्याचार को लोग अखबारों में पढ़ते रहते हैं, किन्तु उनका हृदय द्रवित नहीं होता। उनके प्रति हमारी संवेदना कब उत्पन्न होगी? उनके प्रति कब करुणा के भाव जगेंगे? कब उनके अच्छे दिन आएँगे? अन्य बहुत-सी समस्याएँ हैं, जिनके लिए लोगों का मन करुणार्द्र होना चाहिए, किन्तु होता नहीं। हम बड़ी सरलता से कह देते हैं कि ये उनके कर्मों का फल है। जैसे कर्म किए थे, भोगने पड़ेंगे, किन्तु यह दृष्टिकोण कदापि ठीक नहीं है। हमें मानवीय संवेदना का हृदय से अनुभव करते हुये दूसरों की सेवा में यथाशक्ति तत्पर रहना चाहिये। दूसरों के दुख से दुखित होकर सेवा-क्षेत्र में प्रवृत्त होनेवाले एक महान पुरुष के प्रेरक व अनुकरणीय व्यक्तित्व को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

तेज वर्षा हो रही थी। इसमें एक कुष्ठ रोगी खुले में असहाय पड़ा हुआ बुरी तरह से कराह रहा था। उसकी सहायता करने कोई नहीं आ रहा था। ऐसे में वहाँ से जा रहे एक व्यक्ति की दृष्टि इस रोगी पर पड़ी। रोगी की दयनीय दशा को देखकर उस महानात्मा का हृदय व्यथित हो गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह यही सोच रहा था कि इस रोगी के स्थान पर अगर वह होता तो? इस घटना ने उसे इतना प्रभावित किया कि उसने उसी क्षण से जीवन भर कुष्ठ-रोगियों की सेवा करने का व्रत ले लिया। उसने उस कुष्ठ रोगी को उठाया और अपने घर की ओर चल पड़ा। उसने कुष्ठ रोगियों की सेवा और चिकित्सा करने का व्रत तो ले लिया, लेकिन वह स्वयं नहीं जानता था कि कुष्ठ रोग कैसे होता है और इसका उपचार कैसे किया जाता है? उस दिन के बाद से वह इस रोग और उसके उपचार का अध्ययन करने लगा। हमारे समाज में कुष्ठ रोगियों को उपचार के दौरान या उसके बाद में भी सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता है। अत: उनका पुनर्वास भी आवश्यक था। अत: उसने महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले के घने जंगलों में आनन्दवन नामक एक आश्रम की स्थापना कर कुष्ठ रोगियों के उपचार और पुनर्वास की व्यवस्था की।

वह चाहता था कि रोगियों हेतु शीघ्र ही कोई अच्छा सा उपचार मिल जाये। इसके लिए वह लगातार प्रयोग करता रहा। एक बार तो उसने कुष्ठ रोग के बैक्टीरिया को चिकित्सीय प्रयोग के लिए स्वयं अपने शरीर में ही प्रविष्ट करा लिया, ताकि कुष्ठ रोग पर उचित शोध करके शीघ्र इसके उपचार में सफलता प्राप्त कर सके। कुष्ठ-रोगियों के इस हमदर्द व मानवता के महान सेवक का नाम था मुरलीधर देवीदास आमटे, जिन्हें अधिकांश लोग बाबा आमटे के नाम से जानते हैं। गाँधीजी, जिन्होंने स्वयं कुष्ठ रोगियों के उपचार

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (१३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

पुनस्ततोऽपि साऽविद्या गुणभेदेन षड्विधा।।

कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहो मदश्च मत्सरः।।१५।।

अर्थ : उसके बाद यह अविद्यामाया गुण-भेद से छः प्रकार की होती है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य।।१५।।

ममाहंत्वेन साऽविद्या नरान् बध्नाति सर्वदा।

विद्यामाया प्रकाशात्त्वविद्यैकान्तेन नश्यति।।१६।।

अर्थ : यह अविद्यामाया 'मैं' और 'मेरा' के भाव से मनुष्य को सर्वदा आबद्ध करके रखती है। परन्तु विद्यामाया के प्रकाश से जीवों की अविद्या पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है।।१६।।

सलिलं पङ्किलं यावत् तावत् तद्वद् यथार्थतः।।

प्रतिबिम्बे न दृश्येते निर्मले चन्द्रसूर्ययोः।।१७।।

अर्थ : जैसे जब तक पानी अस्वच्छ रहता है, तब तक चन्द्र-सूर्य के स्वच्छ प्रतिबिम्ब ठीक से नहीं दिखते।।१७।।

यावन्माया ममाहंत्वमेतज्ज्ञानं न नश्यति।।

तावन्न सम्भवेत् सम्यक् साक्षात्कारश्चिदात्मनः।।१८।।

अर्थ : उसी प्रकार माया अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' यह भाव जब तक नष्ट नहीं होता है, तब तक चैतन्य स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार ठीक से सम्भव नहीं होता है।१८।

प्रकशिता यथैवास्ते धरणी सूर्यरश्मिना।।

लवजलद खण्डश्चेदागम्य पुरतो रवेः।।

पिदधाति तदादित्यः स्यान्न दर्शनगोचरः।।१९।।

अर्थ : जैसे सूर्य की किरण से पृथिवी आलोकित हुई है, परन्तु यदि सामान्य एक बादल का टुकड़ा सूर्य के सामने आकर सूर्य को आवृत कर दे, तो सूर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है।।१९।।

सर्वव्यापिनमात्मानं सर्वसाक्षिस्वरूपकम्।।

मायास्तरान्न पश्यामः सच्चिदानन्दमीश्वरम्।।२०।।

अर्थ : उसी प्रकार सर्वव्यापी आत्मस्वरूप एवं सर्वसाक्षिस्वरूप सच्चिदानन्द ईश्वर को माया-आवरण के कारण हम नहीं देख पा रहे हैं।।२०।। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

व पुनर्वास के लिए बहुत काम किया, ने कुष्ठ रोग के क्षेत्र में बाबा आमटे के अथक प्रयासों के लिए उन्हें अभय साधक कहकर पुकारा। उनका समस्त परिवार आज भी उनके इस महान कार्य के लिए निस्स्वार्थ भाव से सेवा में रत है। सचमुच करुणा से ओतप्रोत व्यक्ति ही ऐसा कार्य कर सकता है।

बाबा आमटे का महत्त्व मात्र इसलिए नहीं है कि उन्होंने अपना सारा जीवन कुष्ठ रोगियों की सेवा और उनके पुनर्वास में लगा दिया, अपितु इसलिए अधिक है कि इसके लिए वे अपने शरीर के साथ भयंकर प्रयोग करने और अपने प्राणों को संकट में डालने से भी नहीं हिचकिचाए। ऐसे बहुत-से उदाहरण हमारे सामने हैं। मदर टेरेसा हों अथवा कैलाश सत्यार्थी हों, सबमें करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित है, तभी उन्होंने लोंगों को दुख से बचाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। सूची बहुत लम्बी है, लेकिन करुणा के बिना उदात्त भाव और महान कार्य सम्भव ही नहीं। इसी भावना के अन्तर्गत लोग रक्तदान, दृष्टिदान अथवा देहदान करते हैं। करुणा मनुष्य को उदात्त बना देती है। निस्सन्देह हम सबमें अपने स्वजनों के प्रति करुणा की कमी नहीं है, लेकिन इसमें विस्तार अपेक्षित है। जब हम करुणा के संकुचित भाव या क्षेत्र से ऊपर उठ जाते हैं अथवा हमारी करुणा असीमित होकर विस्तृत हो जाती है, तभी हम सही अर्थों में मनुष्य बन पाते हैं। ○○○

पात्र की अनुकूलता

उत्कर्ष चौबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

'सुबह बनारस, शाम अवध की' कहावत सुनकर प्रातःकाल गंगा दर्शन की इच्छा हुई। अपने वाराणसी प्रवास के दौरान विगत १० अप्रैल को अपनी इसी दीर्घ इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से मैं अपनी प्रिय मित्र स्नेह सिंघानिया के साथ ब्रह्ममुहूर्त में गंगा-दर्शन को निकल पड़ा। अस्सी घाट से पैदल ही हम दोनों गंगा के किनारे-किनारे दशाश्वमेध घाट की ओर बढ़ने लगे।

मौन-मुग्ध उषा स्मित-प्रकाश में हँस रही थी। उस समय गंगा में कुछ लोग ही स्नान कर रहे थे। हम वातावरण की निस्तब्धता और निर्निमेषता को निहार रहे थे। प्रकृति के अद्वितीय दृश्य के साथ ही हम अध्यात्म की गम्भीर चिन्तनीय धारा में गंगा के साथ ही बह रहे थे। ठीक उसी समय हम शीतला मंदिर के निकट पहुँच गये। आरती की मधुर ध्वनि आरम्भ हुई। उधर दशाश्वमेघ घाट से भजन की मधुर ध्वनि गूँज उठी। वह ध्वनि मानो भागीरथी के अंक से संचार करती हुई कहीं दूर जाकर विलीन होने लगी। बसन्त समीर पुष्पों व धूपों की सुगन्ध लिये मन्द-मन्द बह रहा था। प्रकृति में मानो सर्वत्र दिव्यता का अनुभव हो रहा था।

मेरे साथ विचरण करती मेरी मित्र स्नेह घाट पर लगी कुछ दुकानों का अवलोकन कर रही थी कि सहसा एक हृष्ट-पुष्ट युवक, मैले कपड़ों में भीख माँगता मेरे समक्ष उपस्थित हुआ। हमारे शास्त्रों का वचन है कि दान किये बिना मोक्ष नहीं मिलता –

न धैर्येण बिना लक्ष्मीः न शौर्येण बिना जयः।

न ज्ञानेन बिना मोक्षो न दानेन बिना यशः।।

हमारे देश में प्रचलित दान की सरल पद्धति का अनुसरण करते हुए मैंने अपनी जेब में हाथ डाला और एक रुपये का सिक्का निकालते हुए ज्यों ही देना चाहा, त्यों ही स्नेह मेरे हाथों को पकड़ते हुए कड़े शब्दों में बोली – ''एकदम मत दो, एक पैसा भी नहीं। हाथ-पैर सब ठीक-ठाक है, काम नहीं कर सकते, भीख माँगने की आदत ही हो गयी है। जिसे वास्तव में आवश्यकता हो, उसे देना चाहिए।'' मैं उसकी बातों का विरोध तो नहीं कर सका, पर उसे ही उस भिखारी की क्रोध भरी दृष्टि का सामना करना पड़ा। इतना होने पर भी स्नेह ने दान के समय पात्र की अनुकूलता से मेरा साक्षात्कार करवा दिया। विद्वत् जनों का कहना है –

अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते।

अर्हानर्हापरिज्ञानाद्दानं धर्मोऽपि दुष्करः।।

अर्थात् अयोग्य को दिया गया दान और योग्य को न दिया गया दान (दोनों ही अनुचित हैं), उचित-अनुचित का ज्ञान न होने के कारण दान-धर्म भी अत्यन्त कठिन है। मैं इस ज्ञान के लिये अपनी प्रिय मित्र स्नेह सिंघानिया का सहृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। दूसरी ओर इस विषय ने मुझे चिन्तन में डाल दिया। अन्यत्र कहीं कहा गया है '**लक्ष्मी दानवती यस्य सफलं तस्य जीवनम्**'। परन्तु दान किस व्यक्ति को किया जाय और क्या किया जाय, यह मुख्य प्रश्न है। हम अपने दैनिक जीवन में ही देखते हैं कि लोग प्रायः अपने आवास पर गरीबों का, अभावग्रस्तों का तिरस्कार करते हैं, परन्तु वे ही लोग जब तीर्थयात्रा पर निकलते हैं, तो उनकी दानशीलता को देख राजा बली व महारथी कर्ण जैसे दानवीरों को भी पदच्युत होने का भय समा जाता है। कभी किसी भूखे को भोजन नहीं कराना, किसी प्यासे को जल नहीं देना और तीर्थ-स्थलों पर अथवा धार्मिक उत्सवों पर भंडारे का आयोजन करना उनके अन्तर्मन को अवश्य ही संतोष दे, परन्तु दिखावे की ऐसी प्रकृति आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्णतः व्यर्थ है। प्यासे को समय पर जल न पिलाकर बाद में उसे अमृत ही क्यों न पिला दिया जाये, उसका क्या लाभ? किसी प्राणी को क्या देना चाहिए, इस विषय में कहा गया है – रोगी को

औषधि, थके हुए को आसन, प्यासे को जल और भूखे को भोजन देकर संतुष्ट करना चाहिए –

देयं भेषजमार्तस्य परिश्रान्तस्य चासनम्।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्।।

यदि हम अपनी दृष्टि तीर्थों की ओर ले जायें, तो पायेगें कि न जाने कितने ही ऐसे युवक-युवतियों को दूसरों पर आश्रित रहने की आदत-सी हो गई है, भिक्षाटन कर अपनी जीविका चलाना इन शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट युवक-युवतियों का पेशा बन गया है और हम जैसे धर्मभीरु लोगों ने ईश्वर-भय के कारण कुछ-न-कुछ दे-देकर इन्हें पंगु बना दिया है। समय के साथ ही इनकी संख्या भी बढ़ रही है, जो भविष्य में राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होगा, क्योंकि ऐसे नागरिकों की यह प्रवृत्ति देश को विकलांग बना देगी।

स्वामी विवेकानन्द का मत है कि देश को परमुखापेक्षी दास-सुलभ दुर्बलता नहीं चाहिए। भारत के ऐसे नागरिकों को वास्तव में अपने पर, अपनी कुशलता, क्षमता और योग्यता पर विश्वास होना चाहिए। परन्तु ऐसा तब-तक नहीं होगा, जब तक हम उन्हें स्वावलम्बी न बनाकर पैसा देते रहेंगे। यदि हम उनमें स्वाभिमान जाग्रत करेंगे, तभी उनकी अन्तर्निहित शक्ति का स्रोत प्रकट होगा। स्वामीजी के शब्दों में – 'भिखमंगा कभी सुखी नहीं होता। लोग उस पर दया करके, उपेक्षा सहित खीझते हुए इस भावना से भिक्षा देते हैं कि भिखमंगा नीच व्यक्ति है। जो कुछ उसे प्राप्त होता है, उससे वह कभी सुखी नहीं होता।' अन्यत्र उन्होंने कहा था – 'जो जीवन में दूसरों की सहायता से चलना चाहता है या पेट भरने के लिये दूसरे पर आश्रित है, उसका दुखद अन्त अवश्यम्भावी है, वह सत्यत: पंगु है।'

वास्तव में यदि मनुष्य स्वावलम्बी नहीं है, तो विश्व की सारी सम्पदा मिलकर भी उसकी सहायता नहीं कर सकती है। हम लोगों की दया-दृष्टि से ही भारत में बेरोजगारी की ज्वलन्त समस्या उत्पन्न हो रही है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – 'यदि सारी पृथ्वी की धनराशि भारत के एक छोटे-से गाँव में उड़ेल दी जाये, तब भी उसकी उन्नति नहीं होगी, यदि वहाँ के लोग अपने पाँवों पर खड़ा होना न सीखें, अपनी चिन्ता अपने आप न करें।'

आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने से ही व्यक्तिगत व राष्ट्रीय दोनों कल्याण है। स्वावलम्बन को लेकर स्वामीजी इतने कठोर थे कि उन्होंने एक जाग्रत अर्थशास्त्री की भाँति यहाँ तक कह डाला – 'पहले देश के लोगों को अन्न-उपार्जन का उपाय सिखा दो। तत्पश्चात् भागवत पढ़कर सुनाना। भारत क्या बुद्धिवृत्तिहीन है? क्या कला-कौशल शून्य है? उसके शिल्प, उसके गणित, उसके दर्शन को देखकर क्या हम उसे किसी विषय में तुच्छ कह सकते हैं? केवल इसी की आवश्यकता है कि उसे मोहनिद्रा से, शत-शत शताब्दियों की दीर्घ निद्रा से जागना होगा एवं पृथ्वी की सारी जातियों में उसे अपना यथार्थ स्थान ग्रहण करना होगा।''

वास्तव में स्वामीजी ने इस उद्देश्य से सन् १८९७ ई. में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी, जहाँ शिल्प व श्रमजीविका को प्रोत्साहन मिले, श्रीरामकृष्ण के जीवन-संदेश द्वारा धर्मभाव का प्रवर्तन हो, चिकित्सा, अकाल एवं बाढ़-राहत कार्य, ग्रामोद्धार हेतु सेवा कार्य एवं सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा भारतवासियों को स्वावलम्बी व बेरोजगारी से मुक्त बनाया जा सके। इन सेवा कार्यों के लिये आदिवासी व स्थानीय युवकों के लिए कृषि, बागवानी, मधुमक्खी पालन, बेकरी, सिलाई, बढ़ईगिरी, काष्ठकला, बाँसकला, बेल मेटल, बेल्डिग प्रशिक्षण, गो-पालन, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, रेशम उत्पादन आदि द्वारा प्रशिक्षित कार्यों से भारत के कई भागों के युवक आत्मनिर्भर हो रहे हैं। दूसरी ओर महिलाओं के लिए सन् १९८० ई. से पल्लीमंगल (ग्रामीण विकास प्रकल्प) कामारपुकुर, जयरामबाटी, नारायणपुर, राँची सहित अन्य १५ जिलों में चलाया जा रहा है। खेती-बारी के अतिरिक्त स्वनिर्भर प्रकल्पों जैसे अगरबत्ती, हाथकरघों, खाद्य संरक्षण, घी उत्पादन आदि कार्यक्रमों के माध्यम से सैकड़ों ग्रामवासी लाभान्वित हुए हैं।

अन्तत: हमें भावुक न होकर विवेक से काम लेना होगा। भिखारियों में स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता की भावना जागृत करनी होगी। दान अवश्य करें, परन्तु दान करते समय पात्र की अनुकूलता का अवश्य विचार करें, क्योंकि सत्कर्म ही श्रेष्ठ धर्म है, परोपकार ही कार्यकुशलता है, सत्पात्र को दान करने की इच्छा ही श्रेष्ठ कामना है और वैराग्य ही परम मुक्ति है –

उपकार: परो धर्म: परार्थं कर्मनैपुणम्।
पात्रे दानं पर: काम: परो मोक्षो वितृष्णता।। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (२६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

फलश्रुति

य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः।।११।। (४०)

अन्वयार्थ – य: (जो) विद्वान् (ज्ञानी या उपासक) एवम् (इस प्रकार) प्राणम् (प्राण को) वेद (जान लेता है); ह (निश्चय ही) अस्य (उसकी) प्रजा (सन्तति, वंश-परम्परा) न हीयते (नष्ट नहीं होती), अमृत: (अमर) भवति (हो जाती है), तत् (उसी विषय का) एष: (यह) (अगला) श्लोक: (श्लोक है)।

भाष्य – य: कश्चित् एवम् विद्वान्, यथा-उक्त-विशेषैणै:-विशिष्टम्-उत्पत्ति-आदिभि: प्राणं वेद जानाति, तस्य इदम् फलम् ऐहिकम् आमुष्मिकम् च उच्यते।

भाष्यार्थ – जो कोई भी उपासक इस प्रकार जानता हुआ, पहले बताए गए विशेषणों से 'प्राण' की विशिष्ट उत्पत्ति आदि को जानता (तथा उपासना करता) है, अब उसी का यह इहलौकिक-पारलौकिक फल कहा जाता है।

भाष्य – न ह अस्य न एव अस्य विदुष: प्रजा पुत्र-पौत्र-आदि-लक्षणा हीयते छिद्यते। पतिते च शरीरे प्राण-सायुज्यतया अमृतो अमरण-धर्मा भवति। तद् तस्मिन् अर्थे संक्षेप-अभिधायक: एष श्लोक: मन्त्र: भवति ।।११।।

भाष्यार्थ – इन विद्वान् के पुत्र-पौत्र आदि सन्ततियों की परम्परा विच्छिन्न नहीं होती। उनकी देह का पतन हो जाने पर, वे प्राण के साथ सायुज्य (तादात्म्य) को प्राप्त हो जाने से अमर हो जाते हैं। इस अर्थ में संक्षेप से कहा गया, यह (अगला) मंत्र है ।।३/११।।

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा। अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति।।१२।। (४१)

अन्वयार्थ – (वह) प्राणस्य (मुख्य प्राण की) (आत्मा से) उत्पत्तिम् (उत्पत्ति), (शरीर में) आयतिम् (आगमन), (उसकी) स्थानम् (स्थिति) च (तथा) पञ्चधा (पाँच तरह के) (प्राणों के) विभुत्वम् (स्वामी के रूप में) एव (भी) च (और) अध्यात्मम् (शरीर में चक्षु आदि के रूप में और बाहर में सूर्य आदि के रूप में अवस्थान को) एव (भी) विज्ञाय (जानकर) अमृतम् (अमरत्व को) अश्नुते (प्राप्त कर लेता है), विज्ञाय (जानकर) अमृतम् (अमरत्व को) अश्नुते (प्राप्त कर लेता है) इति ।।

भावार्थ – वह (व्यक्ति) मुख्य प्राण की आत्मा से उत्पत्ति, शरीर में आगमन, उसकी स्थिति तथा पाँच तरह के प्राणों के प्रभुत्व को भी और शरीर में चक्षु आदि के रूप में और बाहर में सूर्य आदि के रूप में अवस्थान को भी जानकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है, जानकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ।

भाष्य – उत्पत्तिम् परमात्मन: प्राणस्य आयतिम् आगमनम् मनोकृतेन अस्मिन् शरीरे स्थानम् स्थितिम् च पायु-उपस्थ-आदि-स्थानेषु विभुत्वम् च स्वाम्यम् एव सम्राट् इव प्राणवृत्ति-भेदानां पञ्चधा स्थापनं बाह्यम् आदित्य-आदि-रुपेण अध्यात्मम् च एव चक्षु: आदि आकारेण अवस्थानं विज्ञाय एवम् प्राणम् अमृतम् अश्नुते इति विज्ञायअमृतम् अश्नुते इति द्वि:-वचनम् प्रश्नार्थ-परिसमाप्ति-अर्थम् ।।३/१२।।

भाष्यार्थ – (वह व्यक्ति) परमात्मा से (मुख्य) प्राण की उत्पत्ति को, मन के संकल्प से इस शरीर में आगमन को, पायु-उपस्थ आदि स्थानों में उसकी स्थिति को, सम्राट् के समान पाँच प्रकार से स्वामित्व द्वारा प्राणवृत्ति के स्थापन को, (और) बाहर सूर्य आदि के रूप में तथा शरीर में नेत्र आदि

शेष भाग पृष्ठ ३२० पर

भजन एवं कविता

गुरु से बड़ा नहीं है कोई

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

गुरु-चरनन का मैं आराधक, गुरु-चरनन मम प्राणाधार।
जीवन की अज्ञानराशि को, गुरु हरते कर कृपा अपार ।।

गुरु ब्रह्मा हैं विष्णु महेश्वर, वे ही ज्ञानराशि भंडार ।
वे ही भवभय के हर्त्ता हैं, करते अन्तः रिपु-संहार ।।

आत्मज्ञान की दीप्त शिखा से, हरते हैं तम का अँधियार ।
जन्म-जन्म का बन्ध काटते, ले जाते भवसागर पार ।।

गुरु से बड़ा नहीं है कोई, गुरु सेवा नहिं तप-आगार।
गुरु का ज्ञान परम शाश्वत है, ज्ञान-उदधि वे अपरम्पार ।।

गुरु ही ब्रह्मानन्द रूप हैं, द्वन्दातीत जगत-व्यापार ।
त्रिगुणातीत भाव में रहते, तजकर माया-मोह-विकार ।।

गुरु चरणामृत के सेवन से, मिटता मन का हाहाकार ।
शान्तिसुधा को पाकर साधक तजता जग का मोह असार।।

गुरु ही सर्वभूतस्वामी हैं, वे ही चिदानन्द आकार ।
जगततात को वे हरते हैं, देकर ज्ञान-भक्ति आधार ।।

गुरु की कृपा मोह-मद मिटता, मिलता मोक्षतत्त्व उपहार ।
भवभयनाशक गुरु चरणों में, प्रणति करूँ मैं बारम्बार ।।

प्रभु आइये

विजय श्रीवास्तव

कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।
जो भी हो तुच्छ भेंट कुछ तो ले जाइये ।।

मेरा नहीं था कुछ जन्म पूर्व जग में ,
अब भी 'मैं' छोड़ शेष सब तुम्हारे पग में ।
सूखे से मेघों को अब तो सरसाइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

मायामय विश्व में हम विविध खिलौने,
फिर भी नहीं थकते काज करके कुछ घिनौने ।
हमको विवेकशील दयामय बनाइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

मिथ्या की भाग-दौड़ व्यर्थ की पिपासा,
झूठे आकर्षण नित दे रहे हैं झाँसा
जन्मों की दौड़ में अब तो न फँसाइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

रिश्तों की डोर जन्म लेते ही पाना,
फंदों में उसके उलझ स्वयं को फँसाना ।
खेल बहुत हो चुका है अब तो न खेलाइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

उदर-भरण के लिये करता रहा कमायी,
तृष्णा की आग सदा ही रही समायी।
अब तो समाज के लिये भी कुछ कराइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

साधन जुटाने की शक्ति तुमने दे दी,
संकटों की भित्तियाँ भी कृपा करके भेदीं ।
दोषों को मेरे भुला नाथ अपनाइये,
कब से खुला है द्वार अब तो प्रभु आइये ।।

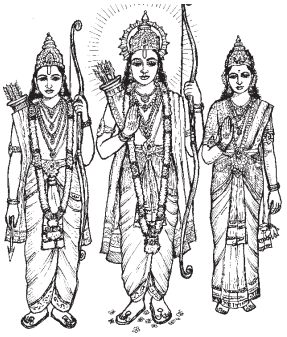

रामराज्य का स्वरूप (६/३)

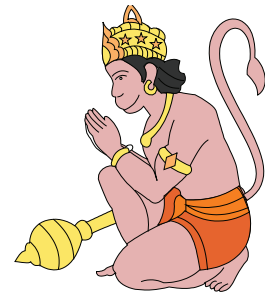

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

कैकेयीजी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा, भरत अभी तुम वातावरण को देखकर बड़े उदास हो रहे हो, पर मैं बताना चाहती हूँ कि अयोध्या में कितना बड़ा अनर्थ होनेवाला था और कितने बड़े अनर्थ को मैंने रोक दिया। तुम्हें राज्य से वंचित करने का षड्यन्त्र रचा जा रहा था। उस षड्यन्त्र में महाराज भागीदार थे, हमारी सौत कौशल्या भागीदार थीं, सब मिलकर तुम्हें राज्य से वंचित करना चाहते थे, पर तुम चिन्ता मत करो, मैंने उन सारे षड्यन्त्रों को नष्ट करने में सफलता प्राप्त कर ली है। इसके बाद उन्होंने दो बातें कही – एक तो उन्होंने कहा कि इसमें एक छोटी-सी दुर्घटना हो गई। महाराज दशरथ की मृत्यु को उन्होंने कहा, छोटी-सी दुर्घटना। शब्द उनका क्या है?

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।

एक-एक शब्द सावधानी से बोल रही हैं। कुछ कार्य ब्रह्मा ने बीच में बिगाड़ दिया। मेरा तो इसमें कोई दोष है ही नहीं, पर ब्रह्मा का यह स्वभाव है कि बीच में कुछ न कुछ दोष उत्पन्न कर देना। ब्रह्मा ने इस कार्य में भी कुछ दोष उत्पन्न कर दिया। पर घबराने की बात नहीं है। वे महाराज दशरथ की मृत्यु को कैसे कह रहीं हैं – कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।

महाराज दशरथ की मृत्यु को इतनी छोटी बना रही हो? तो कहती हैं कि देखने में मृत्यु लगती है, पर विचार करके देखो, तो महाराज दशरथ यहाँ से गये, तो कहाँ गये? बड़े आश्वासन की भाषा में कहती हैं –

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।
भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ।। २/१५९/२

उस समय भी यदि वे किसी की प्रशंसा करना नहीं भूलीं, तो वह थी मन्थरा। मन्थरा का नाम वहीं पर लिया भी उन्होंने। उन्होंने यही कहा कि बहुत बड़ा अनर्थ होनेवाला था, पर

भै मंथरा सहाय बिचारी। २/१५९/१

बेचारी मन्थरा इसमें सहायक बनी। जो तुम्हें राज्य मिला, उसमें बहुत बड़ा श्रेय मन्थरा को भी मिलना चाहिए। इसलिये तुम राजा होने के बाद उसका ध्यान रखना। क्योंकि इसमें मंथरा की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण है !

भरतजी ने जब यह सुना, तो स्तब्ध रह गये। मुँह से शब्द नहीं निकल रहा था। बड़ी कठिनाई से उन्होंने पूछ दिया –

कहु पितु मरन हेतु महतारी। २/१५९/६

पिताजी की मृत्यु कैसे हुई? सब बड़े विस्तार से कैकेयी ने समझाया कि ऐसा-ऐसा हो गया, मैंने ऐसा-ऐसा वरदान माँगा, इत्यादि। भरत ने इतना सुना कि –

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु।।
२/१६०/०

राम का वन-गमन सुनकर उन्हें पिताजी की मृत्यु भूल गयी। वे व्याकुल हो जाते हैं, व्यथित हो जाते हैं और उसके पश्चात भरतजी ने जिन शब्दों में कैकेयी की भर्त्सना की, वे रामायण के कठोरतम शब्द कहे जा सकते हैं। उन्होंने यही शब्द कैकेयी से कहा –

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ।
खंड खंड होइ हृदउ न गयऊ।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा।
गरि न जीह मुहँ परउ न कीरा।।
भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही।
मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।। २/१६१/१-३

इन शब्दों में कैकेयीजी की भर्त्सना की भरत ने। श्रीभरतजी के द्वारा कैकेयीजी के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया, उसे पढ़कर कई लोगों को कभी-कभी बड़ा अमर्यादित जैसा प्रतीत होता है और कई बार लोग यह कहा करते हैं कि माँ के लिए इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना किसी पुत्र के लिए उपयुक्त है क्या? पर आप जरा गहराई से विचार करके देखिए। इसके पीछे श्रीभरत की क्या भावना है?

श्रीभरत के चरित्र की भूमिका, श्रीभरत को रामराज्य की स्थापना में जो भूमिका दी गई है, उस भूमिका का श्रीगणेश यहीं से हो जाता है। लगता है कि श्रीभरतजी के मन में कैकेयी के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया, पर ऐसा नहीं है। राग के दो परिणाम हैं। राग की एक प्रतिक्रिया है–द्वेष। राग की प्रतिक्रिया अगर द्वेष के रूप में हो जाये, जैसा कि संसार में पग-पग पर देखा जाता है। किसी से राग है और उससे राग के स्थान पर द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जिससे हमें राग है, वह जब हमारा विरोधी हो जाता है, तो उससे हमें द्वेष हो जाता है। राग और द्वेष की प्रतिक्रिया का चक्र अगर चल गया, तो वह रावण के राज्य जैसा है। रावण के राज्य का यही स्वरूप है। जो व्यक्ति केवल प्रतिक्रियाओं में जी रहे हैं, हर क्षण एक क्रिया के बदले में प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया के बदले में दूसरी, दूसरी के बदले में तीसरी प्रतिक्रिया, इस प्रकार से प्रतिक्रियाओं के चक्र से जो मुक्त नहीं हो पाते, वे रामराज्य के अधिकारी नहीं हैं। भरत के अन्त:करण में कैकेयी के प्रति राग की प्रतिक्रिया के रूप द्वेष उत्पन्न हो जाये, तब तो भरत के चरित्र का कोई अर्थ ही नहीं है। जहाँ पर राग के बाद द्वेष के स्थान पर अगर वैराग्य उत्पन्न हो जाय, तो यह स्थिति वस्तुत: प्रतिक्रिया से परे है। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति के अन्त:करण में राग के बाद अगर वैराग्य का उदय हुआ, तो फिर वैराग्य की कोई प्रतिक्रिया नहीं है। इसको दृष्टान्त के रूप में कहें कि जैसे एक व्यक्ति कुछ कह रहा है आपको, तो शब्द की प्रतिक्रिया शब्द के रूप में होती है। किसी ने हमें कठोर शब्द कहा, गाली दी और बदले में हमने उसे और दोगुना करके शब्दों का प्रयोग किया। एक प्रतिक्रिया तो यह है। दूसरा किसी व्यक्ति ने गाली दी और उसके प्रतिक्रिया में व्यक्ति मौन हो गया। तो शब्द के दो परिणाम हुए। शब्द के बदले में शब्द जहाँ पर प्रयोग किया जायेगा वहाँ क्रिया-प्रतिक्रिया का चक्र बढ़ते जायेगा। पर जहाँ शब्द के बदले सामनेवाले व्यक्ति के द्वारा मौन स्वीकार कर लिया गया, तो मानो प्रतिक्रिया के क्रम को वहीं समाप्त कर दिया गया। इसीलिए तुलसीदासजी ने बड़ी मीठी बात कही, शत्रुघ्नजी की वन्दना जब उन्होंने रामाज्ञा में लिखी, तो एक अनोखी बात लिखी। उन्होंने कहा शत्रुघ्नजी का स्मरण करने से व्यक्ति को तीन बातों में सफलता मिलती है।

सुमिरि सत्रु सूदन चरन सगुन सुमंगल मानि।
परपुर बाद बिबाद जय जूझ जुआ जय जानि।।

रामाज्ञा-प्रश्न/द्वितीय सर्ग/सप्तक-४/२

शत्रुघ्नजी का नाम लेने से जूए में जीत मिलती है, युद्ध में जीत मिलती है और वाद-विवाद में जीत मिलती है। तब तो जुआड़िओं के लिए यह महामन्त्र हो गया। जब जुए में दाँव लगाना हो, तो 'जय शत्रुघ्नजी' कहकर दाँव लगा दे। तुलसीदासजी आश्वासन दे ही चुके हैं कि जीत अवश्य होगी। पर आशा है कि आप इस धोखे में नहीं पड़ेंगे, ऐसा होगा नहीं। उसका जो तात्पर्य है, वह भिन्न है। इसका अभिप्राय क्या है? वस्तुत: आप अगर शत्रुघ्नजी की तरह दाँव लगाना सीख जायें, तो कभी नहीं हारेंगे। आप अगर शत्रुघ्नजी के जीवन का अनुगमन करें, तो सचमुच आप वाद-विवाद में कभी परास्त नहीं होंगे और शत्रुघ्नजी का अनुगमन करें, तो आप सारे शत्रुओं को जीत लेंगे। इसका उत्तर क्या है? भई, शत्रुघ्नजी ने जीवन में दाँव लगाया, तो किसकी ओर से लगाया? बस उनका तो सारा जीवन श्रीभरत के लिए समर्पित है और श्रीभरत ने वह बात जो आगे चलकर चित्रकूट में कही। यह बहुत मीठा संवाद आता है। श्रीभरत ने जुआड़ी का एक दृष्टान्त दे दिया। उन्होंने श्रीराम से कहा प्रभु, इस समय एक जुए का खेल चल रहा है। उन्होंने जुए का ही दृष्टान्त दिया और जुए का दृष्टान्त इसलिए दिया कि कौन हारेगा और कौन जीतेगा। उन्होंने भगवान राम से कहा कि इस समय धर्म और प्रेम के दो पक्ष हैं। एक ओर धर्म दाँव पर लगा हुआ है और दूसरी ओर प्रेम दाँव पर लगा हुआ है। मैं तो आपकी ओर से धर्म को दाँव में लगाना चाहता था, किन्तु श्रीराम ने कहा, क्या बतावें, भरत के प्रेम ने मुझे इतना वशीभूत कर लिया है कि अब तो मैं इन्हीं की ओर से दाँव पर लगा रहा हूँ। लेकिन शिष्य को सावधान कर दिया – **सूझ जुआरिहि आपन दाऊ। २/२५७/२**

जुआड़ी को अपने दाँव का ध्यान रखना चाहिए और उसका अर्थ है कि कहीं भावना के प्रवाह में तुम प्रेम को न जिता देना। मैं चाहे जो कहूँ, पर तुम्हें अपने धर्म में और मर्यादा के पक्ष में ही स्थिर रहना चाहिए। उस समय श्रीभरत ने एक मीठी बात कही। क्या? बोले, श्रीभरत जब जुआ खेलते हैं, तो श्रीराम से खेलते हैं और संसार के जो जुआड़ी हैं, वे सर्वदा जुआ में जीतने की चेष्टा करते हैं, पर एकमात्र राम ही ऐसे जुआड़ी हैं, एकमात्र ईश्वर ही ऐसा जुआड़ी है, जो हमेशा भक्त को जिताना ही जिताना चाहता है, स्वयं जीतना नहीं चाहता। यही श्रीभरत ने कहा –

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोही।। २/२५९/७-८

इसका अर्थ क्या है? शत्रुघ्नजी तो कभी बाजी हार नहीं सकते। इसका अर्थ यह है कि अगर आप भक्त के पक्ष में दाँव लगावें और केवल भगवान से ही जूआ खेलें, तो आपकी कभी हारने की सम्भावना ही नहीं है। प्रभु निरन्तर अपने भक्तों को जिता करके ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इसलिए शत्रुघ्नजी, श्रीभरत जी तो भगवान के साथ खेलते हैं, पर शत्रुघ्नजी ने श्रीभरत का साथ नहीं छोड़ा। एक सूत्र यह है कि शत्रुघ्नजी का स्मरण करने से विवाद में हार नहीं होती है। विवाद में कौन दावा करेगा? जब तर्क-वितर्क होगा। तर्क तो कोई सत्य का परिचायक है नहीं, तर्क तो व्यक्ति की बुद्धिमत्ता का परिचायक है। ऐसी स्थिति में जो अधिक बुद्धिमान होगा, जिसके पास प्रखर तर्क होंगे, वह जीत जायेगा। पर शत्रुघ्नजी कभी नहीं हारे। क्यों? आप जानते होंगे, शत्रुघ्नजी जीवन में कभी बोले नहीं और इसका अर्थ है कि शास्त्रार्थ में आप मौन व्रत ले लीजिए, तो आप विवाद में कभी नहीं हारेंगे। तर्क करेंगे, तो हार और जीत तो निश्चित है। जो अपने ही मन को जीत ले, तो –

जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज। ७/२२/०

जो आन्तरिक शत्रुओं को जीतने की चेष्टा कर रहा है, उसे पराजित करनेवाला कोई व्यक्ति संसार में नहीं है। वस्तुत: प्रतिक्रिया कभी स्थायी विजय नहीं दिलाती। हार-जीत की क्रिया-प्रतिक्रिया समाज में चलती ही रहती है। भरतजी के जीवन में प्रतिक्रिया नहीं है। अपितु वैराग्य तो भरत के जीवन में है ही, पर कैकेयी अम्बा के कल्याण की परम भावना उनमें आप पायेंगे।

इतने कठोर शब्दों का प्रयोग किया भरतजी ने। किन्तु रामायण में प्रसंग है कि भगवान श्रीराम का दर्शन हुआ, तो लोग मुक्ति के अधिकारी बन गए। पूछा गया कि भरत के दर्शन से क्या हुआ? तो रामायण में उत्तर दिया गया –

जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।।
ते सब भए परम पद जोगू।
भरत दरस मेटा भव रोगू।। २/२१६/१-२

भरतजी के दर्शन से मन के रोग दूर होते हैं। कैकेयी रोगी हैं और श्रीभरत वैद्य हैं। जैसे वैद्य जब किसी रोगी को कड़वी दवा देता है, तो द्वेष के कारण या बदला लेने के कारण नहीं देता है, अपितु उसका उद्देश्य रोगी के रोग को दूर करना है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३१६ का शेष भाग

के रूप में (उसके) अवस्थान को इस प्रकार जानकर अमृतत्व को प्राप्त करता है। दो बार कथन – प्रश्न की परिसमाप्ति का सूचक है।।३/१२।। तृतीय प्रश्न समाप्त। **(क्रमश:)**

सन्दर्भ : १. इसका तात्पर्य यह है – पेट की पाचन-शक्ति यज्ञ की अग्नि है; इन्द्रियों द्वारा बोध उसकी ज्वाला है और अन्न आहुति है । सिर के सात अंग – दो आँखें, दो कान, दो नथुने और मुख, ये उस भोजन के द्वारा उत्पन्न की गई ऊर्जा से अपनी कार्य-क्षमता प्राप्त करते हैं ।

२. मुख्य नाड़ियाँ १०१ हैं, इनमें से प्रत्येक को १०० शाखाओं में विभाजित किया गया है; और इनमें से प्रत्येक शाखा को ७२,००० उप-शाखाओं में विभाजित किया गया है। इस प्रकार उसकी कुल ७२,७२,००,००० उप-शाखाएँ हैं और नाड़ियों की कुल संख्या ७२,७२,१०,२०१ है।

वे इस भीषण भवसागर के उस पार स्वयं भी चले गये हैं और बिना किसी लाभ की आशा किये दूसरों को भी पार करते हैं। ऐसे ही मनुष्य गुरु होते हैं और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नहीं कहा जा सकता। — स्वामी विवेकानन्द

रहीम की रक्षा

गुरुप्रसाद

रहीम खानखाना मुसलमान होने पर भी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। एक बार दिल्ली के बादशाह की आज्ञा से उन्होंने दक्षिण भारत के एक हिन्दू राजा पर चढ़ाई की। घोर युद्ध हुआ तथा अन्त में रहीम खानखाना की विजय हुई। उस हिन्दू राजा ने रहीम के पास यह प्रस्ताव भेजा कि 'अब जीत तो आपकी हो ही गयी है, ऐसी स्थिति में हम लोग परस्पर मित्र बन जाते, तो मेरे लिए गौरव की बात होती।' रहीम बड़े सज्जन थे। उन्होंने राजा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। क्योंकि किसी को भी नीचा दिखाना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। दूसरे दिन राजा ने रहीम से यह प्रार्थना की कि आप यहाँ से जाने के पूर्व मेरे घर भोजन करें। रहीम ने यह भी मान लिया तथा सन्ध्या-समय एक सिपाही साथ लेकर भोजन करने चले। वे किले के फाटक पर पहुँचे, तो उन्हें एक बालक मिला। बालक ने पूछा – ''खाँ साहब! कहाँ जा रहे हैं?''

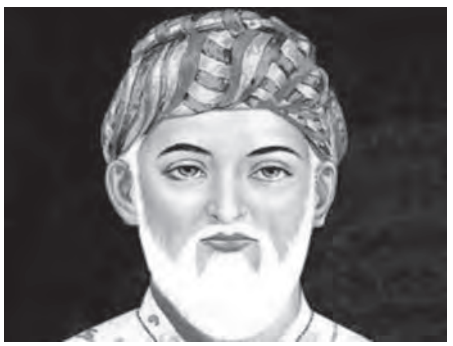

रहीम खानखाना

रहीम – 'राजा के यहाँ भोजन करने जा रहा हूँ।''

बालक – 'मत जाइये।'

रहीम – 'क्यों?'

बालक – 'इसलिए कि राजा के मन में पाप है। उसने आपके भोजन में जहर मिला दिया है। आपको मारकर फिर वह युद्ध करेगा तथा आपकी सेना को मार भगा देगा।'

रहीम – 'पर मैं तो वचन दे चुका हूँ कि भोजन करूँगा।

बालक – 'वचन तोड़ दीजिये।'

रहीम – 'यह मेरे लिये बड़ा कठिन है।'

इस पर वह बालक बड़ी देर तक रहीम को समझाता रहा। फिर भी रहीम जाकर भोजन करने के पक्ष में ही रहे। उन्होंने यह दोहा कहा –

अमी पियावत मान बिनु, कह रहीम न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबौ भलौ, जो विष देय बुलाय।।

किन्तु बालक फिर भी उन्हें रोकता रहा।

अन्त में रहीम ने हँसकर कहा – 'क्या तू भगवान श्रीकृष्ण है, जो मैं तेरी बात मान लूँ।'

अब तो बालक खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला – 'कहीं मैं श्रीकृष्ण ही होऊँ तो।'

रहीम उस बालक की ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखने लगे। इतने में वहाँ परम दिव्य प्रकाश फैल गया और बालक के स्थान पर भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। माथे पर मोर-मुकुट एवं फेंट में वंशी की विचित्र निराली शोभा थी। रहीम उनके चरणों पर गिर पड़े। भगवान बोले – 'अब तो नहीं जाओगे न?'

रहीम – 'जैसी प्रभु की आज्ञा।'

भगवान अन्तर्धान हो गये और रहीम वहीं से लौट पड़े। आकर उसी समय उन्होंने किले पर चढ़ाई कर दी। एक पहर के अंदर उन्होंने राजा को बन्दी बना लिया।

बन्दी-वेष में राजा रहीम के पास आया, तो रहीम ने पूछा – 'क्यों राजा साहब ! मित्र को भी जहर दिया जाता है?' राजा ने सिर नीचा कर लिया, पर उसे अत्यन्त आश्चर्य था कि रहीम जान कैसे गये; क्योंकि उसके अतिरिक्त और किसी को भी इस बात का पता नहीं था। उसने हाथ जोड़ पूछा – 'रहीम ! मैं जानता हूँ कि मुझे मृत्युदण्ड मिलेगा, पर मृत्यु से पहले कृपया यह बतायें कि आप यह भेद जान

शेष भाग पृष्ठ ३२४ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (११७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

८-५-१९६४

सायंकाल भ्रमण के समय वरदा महाराज (स्वामी ईशानानन्द) के साथ भेंट हुई।

वरदा महाराज – कैसे हैं?

प्रेमेश महाराज चुप रहे।

वरदा महाराज – शरीर तो एक न एक प्रकार से रहेगा ही।

महाराज – घर में किसी-किसी सम्बन्धी के आने पर इच्छा होती है कि दो दिन और रहें। फिर ऐसा भी होता है, ऐसी इच्छा होती है कि वे कब जाएँगे? मेरा यह शरीर ही खराब सम्बन्धी है, इसके जाने से ही शान्ति मिलेगी।

वरदा महाराज – फिर भी आप अभी तो कुछ बातें कहते हैं। बातें कहने और सुननेवाले लोग कहाँ हैं? इच्छा होती है कि पहले की तरह आपके पास बैठकर उनकी (श्रीमाँ की) सब बातें सुनता रहूँ।

महाराज – यह पक्षियों का कलरव, पेड़-पौधों की शोभा, आकाश-धूप, फूल-पत्तियाँ, प्राकृतिक परिवेश, सभी कुछ हृदय में एक अव्यक्त आनन्द का आवेश लाते थे, मानों मुझे अनमना, अन्मन्यस्क कर देते। अब यह शरीर (का बन्धन) खुल जाने पर शान्ति मिलेगी।

१०-५-१९६४

सेवक – महाराज, मुझे ये लोग (दो-एक भक्त) अब उतने अच्छे नहीं लगते। क्या यह ठीक है?

महाराज – प्रथम अवस्था में गृहस्थों के साथ मेल-जोल अच्छा नहीं, अपितु थोड़ा घृणा का भाव रहना अच्छा है। दस वर्ष बाद प्रतिष्ठित, परिपक्व हो जाने पर फिर उतना भय नहीं रहता।

किसी-किसी साधु की कोई एक विशेष मनोवृत्ति दृष्टिगत होती है। उसे सावधान करना आवश्यक है। साधु का मस्तिष्क खराब क्यों होगा? बारह वर्षों तक वीर्य-धारण करने पर मेघा नाड़ी खुलती है। तब यह समझ में आता है कि किसका क्या कार्य है, किस कर्म से क्या होता है। किन्तु यह बात ठीक ही है कि कोई अतृप्त वासना संयत करके रखने के कारण ही मस्तिष्क असन्तुलित होता है।

इसके पश्चात् सुविधानुसार प्रत्येक के भीतर नारायण हैं, इस भाव से माँ की तरह सेवा करने से सब ठीक-ठाक क्यों नहीं चलेगा? 'संन्यासी का गीत' प्रथम श्रेणी का (उच्च स्तर का) गीत है – 'दो, दो, सबको अभय।''

१३-५-१९६४

प्रातःकाल एक व्यक्ति अनेक पौधों से फूल तोड़ने हेतु भ्रमण करते हैं। उन्हें देखकर महाराज ने कहा।

समय बिताने का एक-एक कार्य है। पौधों के पास जाकर पुष्प-चयन। एक उच्चतर मनोरंजन की तुलना में पक्षी को पालनेवाले व्यक्ति को देखना एक कुदृश्य है। ये सब मन को बाहर खींचते हैं। (एक नवयुवक के सम्बन्ध में) वह यदि यहाँ रहता, तो उसको अच्छा बनाने का प्रयास करता। किन्तु फिर उसे खोजते हुए आकर पकड़कर वापस ले जाते हुए हंगामा करना, यह मुझे सहन नहीं होगा। फिर भी मैं जीवन में बहानेबाजी नहीं करता। ठाकुर सेवा के भाव से मैंने यथासम्भव कार्य किया है।

तुम तो छः वर्षों से गीता पढ़ रहे हो। किन्तु अभी कुछ समझे हो क्या? ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में एक बार पढ़कर परीक्षा पास कर ली, बस हो गया ! जो लोग थोड़े अधिक गम्भीर हैं, वे नित्य गीता-पाठ करते हैं। थोड़े और सुसंस्कृत लोग गीता का अध्ययन करते हैं, किन्तु बताओ, व्यावहारिक जीवन में गीता का आचरण कौन करता है? स्वामीजी की कविताएँ उनकी शिक्षाओं का सार है।

१४-५-१९६४

प्रात:काल भ्रमण करते हुए –

कुछ दिनों पूर्व चित्त दादा आए थे। आज वे ऋषिकेश चले गए। वे नरेन्द्रपुर में रहते हैं।

महाराज – सारगाछी में बाबा (स्वामी अखण्डानन्द जी) ने विद्यालय खोल दिया था। उस समय पढ़ने हेतु बच्चे नहीं आते थे। जो आते थे, वे वस्त्रहीन और भूखे थे। पिता मजदूर थे, पाँच पैसे की सत्तू जैसी कोई चीज लाते थे। दोपहर बारह बजे वही खाते। इसीलिए बच्चे बिना खाए ही आते थे। वहीं पर आज बहु-उद्देशीय विद्यालय चल रहा है। हमलोगों का संगठन इसी प्रकार प्रारम्भ हुआ है, फिर कल (भविष्य में) सब लोग आयेंगे। वे लोग इसे उचित रूप, आकार देंगे।

ठाकुर और माँ दोनों ने ही कहा है कि मन का पाप, पाप नहीं होता। फिर गीता में कहा गया है – **'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य यः आस्ते मनसा स्मरन्'** – वह मिथ्याचारी है, पाखण्डी अर्थात् ठाकुर और माँ ने हमें उपयोगी बनाकर लाइसेंस दिया है। अब समझो हमलोग कितने तैयारी-रहित हैं।

ये जो वरेण्यानन्द चलते हैं – देखो, काम-कांचन तथा देह की ओर कोई दृष्टि नहीं है। साधु जीवन में उनका एक पहलू बहुत विकसित हुआ है, किन्तु शेष पहलू को कौन विकसित करेगा?

तुम लोगों के शरीर में अभी शक्ति है, मन में बल है, तुम लोग आशावादी हो। मैं सभी विषयों में निराशावादी हूँ। संसार के किसी भी कार्य में अब मुझे ध्यान नहीं देना चाहिये। जब मैं जगत के कार्यों की कोई विवेचना या चर्चा करता हूँ, तो मुझे हँसी आती है। जगत तो अपने प्राकृतिक नियम से ही चलता है।

इसी समय कानाई महाराज से भेंट हुई। महाराज पेराम्बुलेटर पर हैं। उन्होंने आँखों का समाचार पूछकर दवा लगाने को कहा।

महाराज – किशोरावस्था उत्तम है, कोई उद्विग्नता नहीं है। इसीलिए तो वैष्णव मतानुयायियों ने किशोरी-भजन करने को कहा है।

इस भारतवर्ष को किस प्रकार रखा गया है – मानो भगवान साथ-साथ घूम रहे हैं। कितने ही तीर्थ, कितने ही मन्दिर तथा अमुक देवता, अमुक तिथि। चारों ओर से सारे भारत में धर्म की धारा बहती जा रही है।

तुमने इन लोगों से तुलसी-पूजा की बात कही थी। इन सब बातों को समझने के लिए घर में इस प्रकार की संस्कृति रहनी चाहिए। तुम लोग अपने घर में देवपूजा, माला, चन्दन, भोगराग, आरती, तुलसी मंच, कीर्तन, भागवत-पाठ में

प्रवचनकार के सामने तुलसी-अर्पण, मृत्यु के समय तुलसी-विरवा के पास रखने आदि, सब कुछ देखने के अभ्यस्त हो। इसीलिए तुम लोग इन सब बातों की प्रशंसा कर पाते हो। तुलसी-दल देखते ही ठाकुर के श्रीचरण युगल की याद आती है। बिल्वपत्र भी ठाकुर से बहुत सम्बन्धित है, ब्लड प्रेशर में चाय की तरह उसका शरबत पीते हैं।

बांग्लादेश एकदम गौरांग (श्रीचैतन्य) के अधिकार में है। सर्वत्र वही संस्कृति है। शाक्त लोगों की पूजा में भी आरती आदि अनेक प्रथाएँ वैष्णवों की तरह हैं। हमारे घर में गृहदेवता गोविन्दजी थे। दूसरे देवी-देवता भी थे। मेरा घर तो शाक्त मत का था, किन्तु पिताजी निद्रा में 'गोविन्दजी, गोविन्दजी' कहते रहते थे, मानो गोविन्दजी ही घर के मालिक हों। ठीक ऐसा ही भाव था।

१५-५-१९६४

महाराज – अखण्डानन्द महाराज जन्म-दिन मनाने के घोर विरोधी थे। मैं उनके आश्रम में गया हूँ। मैं भी उनका अनुसरण करता था। वैष्णव लोग जन्म-दिन नहीं कहते। वे कहते हैं – आविर्भाव और तिरोभाव ! यदि निर्मल (निष्पाप) उद्भव की बात जानकर जन्म-दिन कहा जाता है, तो उसमें कोई दोष नहीं होता। श्रीमाँ ने भी कहा है – ''मेरे जन्म-

दिन पर तुम लोग कुछ विशेष मत करना।'' ठाकुर-माँ-स्वामीजी इन तीनों के जन्मदिन का आयोजन हो और अन्यलोगों के जन्मदिन पर पूजा, पाठ, जप, चर्चा, विवेचन के चिन्तन में सारा दिन व्यतीत करने में कोई खराब बात नहीं है।

सेवक ने संन्यास के उच्च आदर्श की बात कहते हुए किसी साधु के चाल-चलन का वैष्णवसुलभ व्यवहार देखकर निन्दा की थी।

महाराज – हमलोग तो बस ज्ञान-ज्ञान करते हैं। ज्ञान है क्या? एक चित् (चैतन्य) सर्वत्र है, यही बोध ज्ञान है। चैतन्यदेव ने भक्ति का प्रचार किया था। जन-साधारण के लिए उच्च स्तरीय संस्कृति नहीं होती। ईसाई और इस्लाम धर्म भी भक्ति के ऊपर प्रतिष्ठित है। उच्चतर संस्कृति का आचरण और संरक्षण संन्यासी लोग करेंगे और सुसंस्कृत जीवन न जानने से हानि ही क्या है? यहीं तो राजेन महाराज, शैलेन महाराज, आशु और विधु महाराज रहे हैं। उन सबका कैसा सुन्दर मुख-मण्डल था ! ठाकुर ने कहा है – 'जिसने स्त्री-सुख छोड़ दिया, उसने संसार का सभी सुख छोड़ दिया।'' हमारे ठाकुर-माँ-स्वामीजी को पकड़कर रहने से ही हमारा कल्याण होगा।

'संन्यासी का गीत' एक विशेष प्रकार की पुस्तक है। संन्यास के बाद प्रत्येक संन्यासी को इसकी एक प्रति देना चाहिये। इस नियम का अनुसरण करना ही होगा – एक वर्ष कठोर अनुशासन, ठीक से जप-ध्यान, लीला-चिन्तन करना, भोजन-भ्रमण, सब ठीक करके रखो। 'संन्यासी का गीत' कंठस्थ कर लो। एक तो 'संन्यासी का गीत' है, उसके बाद स्वामीजी द्वारा रचित है।

दोपहर में भोजन करते हुए महाराज ने कहा –

इतना उत्तम श्रेणी का व्यक्ति होने से क्या होगा, सिद्धान्त नहीं जानने से बहुत अच्छा साधु होने पर भी विश्वास नहीं होता। उसकी जो बातें सुनी हैं, उससे लगता है कि उसकी घर (पूर्वाश्रम) लौटने की मनोदशा है अथवा कोई आश्रम बनाना चाहता है? 'सुख के लिए घर करो न निर्माण !' बहुत ही अच्छा भक्त हो सकता है, किन्तु सिद्धान्त नहीं जानने पर किसी भी समय पतन हो सकता है, सिद्धान्त जानकर रहने से हजार बार नीचे गिर जाने पर भी ऊपर उठ सकता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ३२१ का शेष भाग

कैसे गये?' रहीम ने कहा – 'मैं अपने मित्र की हत्या नहीं करूँगा, आपको मृत्यु दण्ड नहीं मिलेगा। पर, वह बात मैं नहीं बताना चाहता।'

राजा ने पृथ्वी पर सिर रखकर कहा –'मुझे प्राणों की भीख न देकर केवल उसी बात को बता देने की भीख दे दें।'

रहीम बोले – अच्छी बात है, तो सुनिए, मेरे एवं आपके प्रभु श्रीकृष्ण ने यह बात बतायी है।

राजा फूट-फूट कर रोने लगा। रहीम ने उसकी हथकड़ी-बेड़ी खोल दी और उसे हृदय से लगा लिया। दोनों उस दिन से सच्चे मित्र बन गए।

जाको राखे साइयाँ मार सकें न कोय। बार न बाँका कर सकें जो जग बैरी होय।। ○○○

श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला जी द्वारा प्रेषित चार पुस्तकें प्राप्त हुईं –

१. एक संन्यासी एक नर्तकी (बंगला)
लेखक – डॉ. शंकरी प्रसाद बसु
अनुवाद – लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, ४/१९ आसफ अली रोड, नई दिल्ली –११०००२, पृष्ठ-१५९, मूल्य -२००/-

२. विश्व धर्म-सम्मेलन, लेखक – लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-१८८, मूल्य-२००/-

३. सावित्री (अंग्रेजी) लेखक – डॉ. एम. वी. नादकर्णी
अनुवाद – लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
प्रकाशक – आरो पब्लिकेशन्स, श्रीअरविन्द सोसाइटी, पुदुचेरी, पृष्ठ - ९४, मूल्य – ४८/-

४. PANORAMA
Writer - Lakshminiwas Jhunjhunwala
Publisher – Ocean Books (P) Ltd. 4/19, Asaf Ali Road, New Delhi -110002, Page 248, Price - 350/-

श्रद्धा : भौतिक और आध्यात्मिक विकास की कुंजी

पी. परमेश्वरन्

पूर्व अध्यक्ष, विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी

जीवन में सफलता और असफलता में अन्तर के लिये एक शब्द 'श्रद्धा' को समर्पित किया जा सकता है। यह अद्वितीय शब्द है, जिसका पर्यायवाची शब्द भारतेतर भाषाओं में नहीं है। इसके अर्थ की व्याख्या करने के लिए कई व्याख्यात्मक शब्दों जैसे विश्वास, भक्ति, निष्ठा, एकाग्रता, समर्पण, त्याग आदि का प्रयोग करना होगा। श्रीशंकराचार्यजी के अनुसार – ''शास्त्रों और गुरु की वाणी में दृढ़ विश्वास के द्वारा परम सत्य की अनुभूति होती है।'' श्रद्धा भी ऐसी ही है।

स्वामी रंगनाथानन्द जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'उपनिषदों का सन्देश' में श्रद्धा को इस प्रकार वर्णित किया है – 'श्रद्धा शब्द का अंग्रेजी में कोई सटीक समतुल्य शब्द नहीं है। प्राय: इसका अनुवाद विश्वास के रूप में किया जाता है, किन्तु श्रीशंकराचार्यजी के अनुसार यह किसी पंथ या रूढ़ि में विश्वास नहीं है, वरन स्वयं में ही प्रत्येक आत्मा को प्रदत्त अनन्त शक्ति में विश्वास है, यह सकारात्मक मानसिकता तथा आस्तिक बुद्धि का सत्य की शक्ति में विश्वास है। यह मानव के चारित्रिक विकास, उसके नागरिक गुण-धर्म तथा सामाजिक छवि के प्रति प्रयासों के पीछे की प्रेरक शक्ति है एवं उसकी विज्ञान तथा धर्म में सत्य की खोज है।''

यम और नचिकेता

गीता पर अपने भाष्य में श्रीअरविन्द ने 'श्रद्धा' शब्द का अनुवाद 'विश्वास' के रूप में किया है और इसकी गहन व्याख्या इस प्रकार की है – ''धर्म, दर्शन, नैतिक नियम, सामाजिक और सांस्कृतिक विचार, जिसमें मैं विश्वास करता हूँ, वे मुझे एक विधि-विधान देते हैं और मेरे विश्वास और श्रद्धा के अनुसार सापेक्ष या परम पूर्णता, सगुण या निर्गुण शब्द-मन्त्र प्रदान करते हैं, जिसमें मैं अपने विश्वास के अनुसार रह सकूँ, अपना निर्माण कर सकूँ और स्वयं को पूर्णता के आदर्श के ढाँचे में ठीक से ढाल सकूँ।''

इस शब्द का महत्त्व और अभिप्राय बड़े सुन्दर ढंग से कठोपनिषद में बताया गया है। स्वामी विवेकानन्द ने कोलकाता के अपने स्वागत भाषण के प्रत्युत्तर में कुछ विस्तार से इसका सन्दर्भ दिया है – ''आप में से जिन लोगों ने समस्त उपनिषदों में अति सुन्दर कठोपनिषद का अध्ययन किया है, उन्हें स्मरण होगा कि किस प्रकार उस राजा ने एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया था, किन्तु दक्षिणा में छाँट-छाँटकर वह ऐसी बूढ़ी गायों को दे रहा था, जो किसी काम के नहीं रह गए थे। (कथा के अनुसार उसके पुत्र नचिकेता को पिता का यह कार्य अच्छा नहीं लगा, उसने पूछा – ''आप मुझे किसे देंगे? बारंबार ऐसा पूछने पर पिता ने झुंझलाकर उत्तर दिया – मैं तुझे यम को दूँगा।'') उक्त ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि उस समय श्रद्धा ने उसके पुत्र नचिकेता के अन्त:करण में प्रवेश किया। क्योंकि उसके प्रवेश के दूसरे ही क्षण हम नचिकेता को स्वयं से यह कहते हुए सुनते हैं – ''मैं अनेकों में श्रेष्ठ हूँ, अनेक मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, किन्तु मैं किसी भी प्रकार सबसे हीन नहीं हूँ। अत: मैं कुछ न कुछ कर सकता हूँ।'' उसका यह आत्मविश्वास बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसका समाधान करना चाहा। वह समस्या थी मृत्यु की। इस समस्या का हल केवल मृत्यु के घर जाकर ही प्राप्त हो सकता था, अत: वह बालक वहीं गया। वहाँ उस निर्भीक बालक नचिकेता ने मृत्यु के द्वार पर तीन दिन प्रतीक्षा की और आप जानते ही हैं किस प्रकार उसने अभीप्सित वस्तु प्राप्त की। इसी श्रद्धा को आप सब प्राप्त कीजिए।

''पश्चिमी जातियों के द्वारा भौतिक सत्ता का जो कुछ प्रकटीकरण आपको दिखाई दे रहा है, वह इस श्रद्धा का ही परिणाम है। क्योंकि उन्हें अपनी कर्मशक्ति पर विश्वास है। फिर यदि आप भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर आस्था रखें, तो उससे भी कितना ही अधिक कार्य कर सकते हैं! यही श्रद्धा है, जो मैं चाहता हूँ और हम सब उसी के अर्थात्

आत्मविश्वास के भूखे हैं। उस श्रद्धा को प्राप्त करना ही आपके सामने बड़ा कार्य है। प्रत्येक वस्तु का उपहास उड़ाने की, गम्भीरता के भारी अभाव की इस भयानक बीमारी के चंगुल से बचें, जो हमारे राष्ट्रीय शोणित में घुसती जा रही है। इसको त्याग दो। वीर बनो, श्रद्धावान बनो। अन्य सब बातें इनके पीछे-पीछे अपने स्वयं चली आएँगी।''[१]

अत: 'श्रद्धा' को अपने जीवन में अनुभव करने के लिये कठोर श्रम करने की अदम्य इच्छाशक्ति के साथ पूर्ण और दृढ़विश्वास – स्वयं तथा स्वयं की आस्था में विश्वास – के रूप में परिभाषित की जा सकती है। इसका जो भी मूल्य हो, चुकाना होगा। यह ऐसा विश्वास है, जो असम्भव को भी सम्भव बना सकता है। विश्व के इतिहास में इस प्रकार की अचल श्रद्धा रखनेवाले लोगों ने कठिनतम और महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को प्राप्त किया है।

भगवद्गीता के अनुसार – मनुष्य श्रद्धा नामक सामग्री से निर्मित है। मनुष्य वही है, जैसी उसकी श्रद्धा है। **''श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः''(१७/३)** भगवद्गीता आगे कहती है कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती है – सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। व्यक्ति की उपलब्धि उसकी श्रद्धा के अनुसार बदलती है। परन्तु नि:संदेह गहन विश्वास तथा अनुवर्ती प्रयासों के बिना यह उपलब्धि सम्भव नहीं है। सात्त्विक मनुष्य की उपलब्धि मानवता के लिये एक बड़ा वरदान होगी, जबकि राजसिक विश्वासवाले व्यक्ति की उपलब्धि मिश्रित परिणाम देगी। वहीं तामसिक व्यक्ति न केवल स्वयं को, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को नष्ट करेगा। इसलिए मनुष्य के जीवन में श्रद्धा के योगदान को स्मरण रखना महत्त्वपूर्ण है। श्रद्धा के बिना कोई भी व्यक्ति बड़ी उपलब्धि नहीं पा सकता।

भगवद्गीता में उदाहरण है कि कैसे बिना श्रद्धा के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। ज्ञान उसी को प्राप्त हो सकता है, जिसने समस्त चंचल इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है, जो गहन एकाग्रतावाला है तथा ज्ञानप्राप्ति के प्रति भक्ति और समर्पणवाला है। इस प्रकार से अर्जित ज्ञान आपको शुद्ध करेगा और आपको शान्ति की सर्वोच्च स्थिति में ले जायेगा। इसका कोई महत्त्व नहीं है कि आपने जो ज्ञान अर्जित किया है, वह आध्यात्मिक है या अन्य, पर इसको अर्जित करने का माध्यम श्रद्धा और केवल श्रद्धा है।

भगवद्गीता यह घोषणा भी करती है कि दान करना, त्याग या तपस्या जैसे शुभ कार्य भी पूरी तरह से व्यर्थ हो जाते हैं, यदि वे सच्ची श्रद्धा से नहीं किये गये हों। उस व्यक्ति का इस जीवन में और मरणोत्तर जीवन में भी कुछ भला नहीं होगा। उपनिषद् भी हमारे जीवन में श्रद्धा के महत्त्व को ज्वलन्त रूप में बताते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में जो विद्यार्थी गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूरी कर, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए वापस आ गया है, उसे अर्पण के महत्त्व के बारे में परामर्श दिया गया है और जोर देकर यह कहा गया है कि अर्पण श्रद्धा के साथ किया जाना चाहिए। वह बिना श्रद्धा के कुछ भी अर्पित नहीं करने हेतु चेतावनी देता है। आगे उपनिषद निर्देश देता है – ''अर्पण पर्याप्त मात्रा में, विनय, श्रद्धा और बुद्धिमत्तापूर्ण होना चाहिए।'' इसका अर्थ है बिना आदर और श्रद्धा के और भेदभाव वाला अथवा संयोग मात्र से किया जानेवाला कोई भी अर्पण किसी प्रकार का सकारात्मक परिणाम नहीं देगा। ऐसे अर्पण को तामसिक कहा जाता है।

हमारे समस्त धार्मिक ग्रन्थ, शास्त्र, पुराण और इतिहास सार्थक रूप से न केवल श्रद्धा के महत्त्व का उपदेश देते हैं, वरन् महान पुरुषों और स्त्रियों के जीवन के माध्यम से इसे विपुलता से समझाते भी हैं। ये उदाहरण ही हमारे इतिहास में शताब्दियों से अनगिनत पीढ़ियों को श्रद्धा का गुण विकसित करने की प्रेरणा देते आए हैं।

मनुष्य का कोई भी कर्म उसकी श्रद्धा का प्रतिफल और सही प्रतिबिम्ब होगा। यह उस मनुष्य की प्रकृति के अनुसार तामसिक, राजसिक या सात्त्विक होगा। भगवद्गीता कहती है कि मनुष्य का न केवल कर्म, त्याग या अर्पण अपितु उसके द्वारा गृहीत भोजन भी इन्हीं तीन प्रकार का होता है। यह अन्य प्रकार का नहीं हो सकता। यहाँ तक कि पूजा के देवता भी श्रद्धा के अनुसार चुने जाते हैं। जब तक कोई अपनी श्रद्धा में मौलिक परिवर्तन नहीं लाता, इससे भागना सम्भव नहीं है। श्रीअरविन्द ने अपने ''एसेज ऑन द गीता'' में इस निम्न से ऊर्ध्व परिवर्तन के बारे में बताया है – एक तामसिक श्रद्धावाला व्यक्ति तब तक एक-एक कदम ऊपर उठता जाता है, जब तक वह न केवल सात्त्विक स्तर को पा लेता है, अपितु वह उसे भी पार कर सच्चे अर्थ में 'गुणातीत' हो जाता है। गीता किसी साधक को अन्ततोगत्वा इसी लक्ष्य पर आगे बढ़ाती है। तब सात्त्विक त्याग ध्येय के

अत्यन्त निकट आ जाता है और वैसे कर्म की ओर ले जाता है, जैसा गीता ने कहा है, पर यह अन्तिम और सर्वोच्च ध्येय नहीं है, यह दैवी प्रकृति में स्थित परिपूर्ण पुरुष का कर्म नहीं है। इस प्रकार के कर्म हमारी परिपूर्णता के लिये आवश्यक हैं, क्योंकि ये हमारे विचार, हमारी इच्छा तथा हमारे प्राकृतिक पदार्थों का शुद्धिकरण करते हैं, पर इस सात्त्विक कर्म की पराकाष्ठा जहाँ हमें पहुँचना है, इससे भी बृहद् और मुक्त है। सम्पूर्णता के रूप में उनको अर्पित हमारा वह त्याग सर्वोच्च त्याग है, जो 'वासुदेवं सर्वं इति' अर्थात् सबमें वासुदेव की दृष्टि रखते हुए पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए किया जाता है।[२]

श्रद्धा कर्म में पूर्ण समर्पण को समाहित करती है, पर अपने विस्तार में यह समर्पण बहु-आयामी है। समर्पण में व्यक्ति को अपने समस्त विचार, अपनी अनुभूतियाँ, अपनी महत्वाकांक्षाएँ सब कुछ अर्पित करना होता है, जो स्व नहीं है, अपितु उसे जो स्वयं में पराकाष्ठा है। श्री के.एम. मुंशी के अनुसार 'त्याग के रूप में अर्पित पृथक कर्म प्रशिक्षण के लिये उत्तम हो सकते हैं, पर वे एक समर्पित जीवन का निर्माण नहीं करते हैं। यह ध्यान रखना होगा कि जो भी अर्पित किया जाना है, वह मात्र कर्म नहीं है, बल्कि कर्म के माध्यम से हमारी पूरी जन्मजात प्रकृति का अर्पण है। जब एक पुजारी किसी मंदिर में पुष्प अर्पित करता है, तो यह देवता को सम्पूर्ण समर्पण का प्रतीक मात्र है। त्याग में निश्चित रूप से समर्पण सम्मिलित है। इसलिए जब तक हम जीवन के प्रत्येक क्षण को कार्य में ही निरूपित करना नहीं सीखते, तब तक पूर्ण समर्पण असम्भव है।[३]

श्रद्धा का इतने उच्च स्तर पर गुणगान करने के बाद गीता इसके विपरीत यह भी बताती है कि उनके साथ क्या होता है, जो श्रद्धा नहीं रखते। श्रद्धाविहीन व्यक्ति अज्ञानी के समान होता है, भले ही वह कितना भी पढ़ा-लिखा क्यों न हो। शंका और संदेह कभी उसे नहीं छोड़ते। ऐसा व्यक्ति विनाश की ओर जाता है। वह इस लोक या परलोक में सफल नहीं हो सकता।

श्रद्धा वह गुण है, जो सबमें सम्पूर्णता लाता है। क्योंकि यह किसी भी प्रकार के कर्म को पूजा के स्तर तक ऊँचा उठा देता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में – कर्म ही पूजा है और जब सारा मन उस कार्य में एकाग्रचित्त होता है, तब अपनी ऊर्जा का किसी भी प्रकार से व्यर्थ नाश नहीं होता, वरन् इस प्रक्रिया में स्व का अभिषेक भी होता है। यही कर्म को सम्पूर्ण तथा सुन्दर बनाता है, जो किसी भी कर्मयोगी का सर्वोच्च लक्ष्य है।

सभी महापुरुषों के जीवन श्रद्धा की शक्ति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। हम जानते हैं कि विवेकानन्द केन्द्र के कार्यकर्ता के रूप में माननीय एकनाथ जी रानाडे ने उस कार्य को पूरा किया, जिसे असम्भव मानकर लगभग छोड़ दिया गया था। स्वामी विवेकानन्द का कन्याकुमारी में स्थित भव्यशिला स्मारक, उस महान गुण का स्मारक भी है, जिसकी प्रचुरता एकनाथजी के अन्दर थी और जिसने उन्हें सही में अमर बना दिया। यह हम सबके लिये अनुकरणीय तथा उदाहरणीय अक्षय एवं अनन्त प्रेरणा है।

इस महान गुण को विकसित करने का हर व्यक्ति का प्रयास होना चाहिए, जिसे डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपनी पुस्तक 'इंडिया २०२० : विजन फॉर द न्यूमिलेनियम' तथा 'विंग्स ऑफ फायर' के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। यह श्रद्धा ही है, जो भारत को तकनीकी रूप से उन्नत देशों के मानचित्र पर रख सकी है। पुन: डॉ. विजय भटकर की C-DAC टीम के सदस्यों में विकसित यह श्रद्धा ही है, जो परम १०००० के निर्माण को सम्भव कर सकी। यह कम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा तथा गहरी प्रतिबद्धता ही है, जो डॉ. अमर्त्य सेन को नोबेल पुरस्कार दिलवा सकी। ऐसे असंख्य उदाहरण हैं। भारत को जगद्गुरु बनाने के लिये हमें इस श्रद्धा को व्यवहारिक रूप देने की आवश्यकता है और जब हम कृष्ण संवत्सर के ५२वीं शताब्दी तथा अंग्रेजी कैलेंडर की २१वीं शताब्दी में प्रवेश कर रहे हैं, तो हमें पूरी तरह से इस ध्येय का भार लेना चाहिए और अपना सम्पूर्ण प्रयास स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द तथा विगत एवं वर्तमान के अन्य उदाहरणीय राष्ट्र-निर्माताओं के स्वप्न को पूरा करने में लगाना चाहिए। मात्र इस दिशा में सचेत व सतत प्रयास ही इस कार्य को पूर्ण करने की कुंजी है। हम विश्वस्त हैं कि हमारे सभी कार्यकर्ता, हितैषी, दानदाता एवं केन्द्र के सभी सदस्य इसे एक चुनौती के रूप में लेंगे और इस देश को महान तथा इसके भविष्य को गौरवशाली बनाएँगे। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. हे हिन्दू राष्ट्र ! उत्तिष्ठत जाग्रत, पृष्ठ ७०-७१ २. एसेज ऑन द गीता-श्रीअरविन्द, पृष्ठ संख्या ४८७ ३.Views and vistas – के.एम.मुंशी, पृष्ठ ५४.

गीतातत्त्व-चिन्तन (४)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान के अनेक रूप

भगवान तो एक ही विराट् रूप में दिख सकते हैं। तब फिर बहुवचन रूपाणि कहने की आवश्यकता क्यों हुई? इसकी व्याख्या यह की जाती है कि उसी एक विराट् रूप में अनेकों विभिन्न रूप विद्यमान हैं। भगवान कहना चाहते होंगे कि मैं जो अपना रूप तुझे दिखाने जा रहा हूँ, वह मनमोहक है, दिव्य है। उसका दर्शन कर तुम आनन्द लेना। उसे देखकर तू डर मत जाना। जैसाकि पहले कुछ लोग डरकर उसे देखने से वंचित रह गये। चाहे जितनी भी भूमिका अपना रूप दिखाने से पहले भगवान ने बनाई हो, किन्तु उनके रूप के दर्शन करने के बाद अर्जुन घबरा ही गया और भगवान से विनती करने लगा – प्रभो ! आपके इस रूप को मैं देखना नहीं चाहता। आप अपने इस रूप को संवरित कर लीजिए और फिर से अपने उसी चतुर्भुजधारी मनुष्य के रूप में मेरे सामने प्रकट होइए। महाभारत में भी एक प्रसंग आता है कि दिव्य पुष्प को लेने जाकर गन्धमादन पर्वत पर भीम की भेंट हनुमानजी से हुई। भीम ने हनुमानजी से अनुरोध किया कि वे समुद्र को लाँघने के समय का अपना रूप उसे दिखाएँ।

कृपा करके जब हनुमानजी ने अपना वह रूप दिखाया, तब भीम घबरा गया और उनसे अपने पूर्व रूप में ही लौट आने की प्रार्थना करने लगा। तात्पर्य यह है कि मनुष्य उत्सुकतावश भगवान का विराट् रूप देखना चाहता तो है, पर देखकर उसे पचा भी नहीं सकता। भगवान के विराट् रूप को देखकर इन सब लोगों के भयभीत हो जाने की बात भी अर्जुन जानता ही था। इसीलिए भगवान से उसने कहा कि यदि वे उसे उस रूप को देख सकने योग्य समझते हों, तो कृपा करके दिखा दें। भिन्न-भिन्न अवतारों में भगवान की भिन्न-भिन्न आकृतियाँ हैं, भिन्न-भिन्न वर्ण हैं, इसीलिए अनेक कहा।

दिव्य वह है, जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता। जैसे मानसिक धरातल पर जो कुछ होता रहता है, उसको हम दिव्य कहते हैं। मन के धरातल पर जो उभरती हैं, इन्द्रियों से जो पकड़ी नहीं जातीं, वे भाव-राज्य की बातें होती हैं। उन बातों को हम दिव्य कहते हैं। हमारे मन के भीतर हर्ष की एक प्रक्रिया होती है, हर्ष की एक वृत्ति उठती है। अब कोई उसका स्वरूप पूछे, तो बताया कैसे जा सकता है? हर्ष की इस अवस्था को बाहरी इन्द्रियों द्वारा पकड़ा तो नहीं जा सकता, फिर भी हर्ष का बोध तो होता है। भाव-राज्य की इन बातों को दिव्य कहा जाता है।

ईश्वर के अनेक रूप

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपना दिव्य रूप दिखाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। आप पूछ सकते हैं कि उत्सुक क्यों हैं? उनकी उत्सुकता का पता कैसे चला? ग्यारहवें अध्याय के पाँचवें से आठवें श्लोक तक भगवान अर्जुन से पाँच बार कहते हैं – तू मेरा दिव्य रूप देख ! बार-बार कहते हैं – पश्य। इसका तात्पर्य यह है कि स्वयं भगवान अर्जुन को अपना दिव्य रूप दिखाने के लिए उत्सुक हैं। जैसेकि जब किसी के जीवन में ज्ञान आकर पुञ्जीभूत हो जाता है; उसका अपना जीवन ज्ञान के आलोक से उद्भासित हो जाता है, तो वह स्वयं उस ज्ञान को दूसरों को देने के लिए व्याकुल हो जाता है। जैसे एक विद्यार्थी ज्ञान पाने के लिये व्याकुल होकर भटकता है, उसी प्रकार जिसके भीतर

में भगवान की कृपा से ज्ञान का दिव्य आलोक उतर गया है, जिसका जीवन धन्य हो गया है, वह भी उस ज्ञान को बाँटने के लिये उसी प्रकार आतुर रहता है। यही गुरुभाव है। इसी को गुरुभाव कहते हैं।

गुरुभाव का अर्थ केवल शिष्य बनाना नहीं है, गुरु एक ऐसा भाव है, जो हमारे भीतर में ज्ञान को लाकर रख दिया करता है। गुरु मनुष्य नहीं, बल्कि मनुष्य के माध्यम से प्रकट होनेवाला दिव्य भाव है। जीव और ईश्वर के बीच का सेतु है गुरु। गुरु अज्ञान अन्धकार दूर करके ज्ञान का प्रकाश देता है। जब गुरु के हृदय में अनुभूतियाँ लबालब भर जाती हैं, तब गुरु यथार्थ पात्र खोजता रहता है, जिसे वह उस ज्ञान को सौंपकर उसके जीवन को भी धन्य कर दे। श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन में भी यही हुआ। जब सारी साधनाएँ उन्होंने साध लीं, उनके भीतर में अनुभूतियाँ लबाबल भर गईं, वे यथार्थ पात्र खोजने लगे कि मैं इस ज्ञान का वितरण करूँ, यह ज्ञान दूसरों के जीवन में भी उतरकर धन्य कर दे, इस विचार से उनमें व्याकुलता उत्पन्न हुई कि इसका प्रसार होना चाहिये और इसलिये हम देखते हैं कि वे क्या करते थे। मथुर बाबू की कोठी की छत पर श्रीरामकृष्ण चले जाते और गंगा की ओर मुख करके जोरों से चिल्लाकर कहते – तुमलोग आओ ! तुमलोग कहाँ हो! मैं तुम लोगों से बात करने के लिये व्याकुल हो रहा हूँ। श्रीरामकृष्ण देव माँ से प्रार्थना करते हैं कि तू मेरे पास कुछ शुद्ध सत्त्व लोगों को भेज दो, जिनसे मैं ईश्वर की बातें कर सकूँ। हम देखते हैं कि उनके पास शिष्य आते हैं, कालेज के छात्र आते हैं।

सामान्य गुरु कान में मन्त्र देते हैं और यथार्थ गुरु प्राण में मन्त्र देते हैं। उसके फलस्वरूप शिष्य के मन में तीव्र व्याकुलता आती है और वह इस संसार से परे अतीन्द्रिय सत्ता को देखने का, जानने का प्रयास करता है। यहाँ पर श्रीकृष्ण का गुरुभाव प्रकट होता है।

भगवान अर्जुन को जो अपना दिव्यरूप दिखाते हैं, उसको देखकर अर्जुन पहले तो हर्षित होता है, किन्तु बाद में घबरा जाता है। यह जो उसका पहले हर्षित होना है, वह दर्शाता है कि उसने एकाग्रचित्त होकर भगवान के रूप को देखा है। उस समय उसमें भय का भाव नहीं आया। बाद में भय का भाव क्यों आया?

अर्जुन का भय उसके अहंकार के कारण

अर्जुन जब यथार्थ शिष्य के रूप में भगवान के तेजोमय रूप का दर्शन करता है, तब उसके मन में आनन्द की मानो एक लहर उठती है। पर जिस समय उसके मन में अहंकार आ जाता है, उस समय वह भगवान से पृथक् अपने आपको देखता है और डरने लगता है। भगवान तो द्रष्टा हैं, सबको देखनेवाले हैं। पर यहाँ आकर वे स्वयं दृश्य बन गये हैं। ईश्वर सबके हृदय में बैठकर सबको देखनेवाले हैं, इसीलिए द्रष्टा कहलाते हैं। जीव दिखाई देता है, इसीलिए वह दृश्य है। यहाँ पर यह विलक्षण बात हुई कि भगवान ने अपना दिव्य रूप दिखाया, तो अर्जुन द्रष्टा बन गया और भगवान दृश्य बन गये। अर्जुन द्रष्टा बनकर भगवानरूपी दृश्य को देख रहा है, उनके विराटरूप का दर्शन कर रहा है। केवल अर्जुन ही इस दृश्य को नहीं देख रहा है, संजय भी देख रहा है। संजय तो दृश्य और द्रष्टा दोनों को एक साथ देख रहा है। संजय देख सक रहा है कि द्रष्टा बनकर अर्जुन इस भव्य दृश्य को किस भाव से देख रहा है, यह विलक्षणता संजय को ही प्राप्त है। इससे पता चलता है कि संजय भी कम भाग्यशाली नहीं है। अपने जिस अव्यय रूप को भगवान अर्जुन को दिखा रहे हैं, उसके दर्शन का अधिकारी संजय भी है।

भगवान का विराट रूप छल नहीं

अर्जुन के नाम में पार्थ का प्रयोग तब-तब किया गया, जब-जब उसके साथ अपनत्व दर्शाना हो। संजय ने धृतराष्ट्र से जो वर्णन किया –

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।।९।।

संजय उवाच (संजय बोला) राजन् (हे राजन्!) महायोगेश्वरः हरिः (महायोगेश्वर हरि ने) एवम् उक्त्वा (ऐसा कहकर) ततः पार्थाय (तब अर्जुन को) परमम् ऐश्वरम् (परम ऐश्वर्यवान) रूपम् दर्शयामास (दिव्य रूप दिखाया)।

''हे राजन् ! महायोगेश्वर हरि ने ऐसा कहकर तब अर्जुन को (अपना) परम ऐश्वर्यवान दिव्य रूप दिखाया।''

तो सबसे पहले पार्थ नाम के प्रयुक्त होने से सिद्ध हो गया कि उससे भगवान का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।

शेष भाग पृष्ठ ३३३ पर

गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

जब जीवन में आप सब प्रकार से अच्छे रहते हैं, तो उसमें पूर्व जन्मों का पुण्य रहता है। इन सब घटनाओं से लगता है कि ईश्वर नाम में बहुत बड़ी शक्ति है। इस जन्म में अच्छे संस्कार रहेंगे और यदि मुक्ति नहीं हुई, तो अगला जन्म श्रीठाकुर की कृपा से मनुष्य-जन्म ही मिलेगा। अगले जन्मों को ठीक करने के लिए इसी जन्म को सुधारना पड़ता है। अपने-अपने कर्मों के कारण सबको ऐसा मिल रहा है। जगत में हम ऐसी परिस्थिति में रह रहे हैं कि यह भूल जाते हैं कि हमें मानव-देह क्यों मिला? मानव-देह ईश्वर को पाने के लिए ही मिला है, लेकिन संसार में आकर सब भूल जाते हैं और बहुत दु:ख-कष्ट होता है। जब तक जीवित हो, तब तक जीवन अच्छा बनाने का प्रयत्न करो, उसमें ही जीवन की सार्थकता है। अच्छी मृत्यु के लिए भी हमें जीवनभर भगवान का नाम जप करना है और अच्छा संस्कारित जीवन बीताना है। इससे मरण भी सुधरता है।

जीवन में सफलता और शान्ति पाने के लिए साधना करनी है। हमारा लक्ष्य निर्धारित होना चाहिए। हमारी भूख और आवश्यकता कितनी है, यह देखना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ रहता है। इसलिए शास्त्र में लिखा है, संतुलित और संयमित जीवन बिताओ।

ठीक इसी प्रकार मानसिक स्थिति में भी हमें ठीक रहना है और अपने जीवन में थोड़ा समय निकालकर उपासना करनी है। जीवन में व्यवस्था और सन्तुलन भी रखना है। सन्तुलित जीवन नहीं होने से मन अव्यस्थित हो जाता है और बहुत नचाता है, इसलिए जीवन में सन्तुलन और सावधानी रखन बहुत आवश्यक है। साधक-साधिका को संतुलित जीवन रखना है, नहीं तो साधना नहीं कर सकते। नियम बनाने से मन हमारा बँध जाता है और एक नियमितता से जीवन उन्नत होता है। जन्म-मरण के चक्कर से छूटने का ये सब प्रयत्न है, नहीं तो पुनरपि जननं पुनरपि मरणम् – बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहोगे।

इसलिये ये सब जीवन का लक्ष्य निर्धारित होना चाहिए और लक्ष्य प्राप्ति के लिये संयत और संतुलित जीवन बिताना चाहिए। जैसे रथ के घोड़े को लगाम लगा के संयत रखते हैं, वैसे हमारे मन को भी नियम से संयत करके रखना है। ऐसा अभ्यास करने से सभी दुखों का अन्त होता है। अपने दैनिक जीवन में उपासना के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में देर नहीं होती। जब जागे, तभी सबेरा। बीती ताही बीसरिये आगे की सुधि लेय। जितना सहजता से हो सके, उतना ही करो।

पश्चाताप के चक्कर में मत पड़ना। भगवान का नाम-स्मरण और प्रार्थना करो, जो सरलता से हो सके, वह करो, तो लौकिक जीवन में सुखी रहोगे। जीवन में भगवान के प्रति निष्ठा बहुत आवश्यक है और प्रार्थना में बहुत शक्ति है। आध्यात्मिक जीवन का प्राण ही प्रार्थना है। प्रार्थना से मन में शक्ति आती है।

शरीर की उम्र हो गयी है, शरीर साथ नहीं दे रहा है, तब क्या लेकर रहेंगे? तो ठाकुर ने कहा है नाम में रुचि। नाम में रुचि कैसी आती है? बार-बार उनका नाम लेने से ही आती है। नाम में रुचि रखने के लिए नाम बदलना नहीं चाहिए। संसार में जितने मन्त्र हैं, वे सब मेरे गुरु के दिये हुए मन्त्र ही हैं, ऐसा सोचना चाहिए। अपनी सभी भावनाओं को हमें भगवोन्मुख करना चाहिए। उससे दोष कट जाते हैं और भगवान में प्रेम होता है। गुरु ने जो मन्त्र दिया है, वही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। गुरु के दिये हुए मन्त्र का जप करते-करत सब बुरे संस्कार कट जाते हैं और इसी जन्म में मुक्ति मिलती है। गुरु अनेक हो सकते हैं, लेकिन गुरु-शक्ति एक ही रहती है।

सबको अपने-अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। हमने पिछले जन्म में शुभकर्म किये होंगे, उससे हमें मनुष्य जन्म मिला है। हमें किसी का अकल्याण नहीं करना चाहिए। प्रभु की लीला-गान करने से पाप कट जाते हैं। संसार में सबसे बड़ा कष्ट है जन्म लेना तो ऐसा प्रयत्न करो कि जन्म न लेना पड़े। सतत भगवान का नाम-स्मरण करते रहो। नाम लेते लेते नामी को पाओगे। ऐसा विश्वास करो कि हमारे ऊपर इष्ट की कृपा है। अन्त समय उनका दर्शन होगा। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (४३)

काशी में साधुसंग और स्वामी अचलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

भारत के अध्यात्म-इतिहास में काशी का एक विशेष स्थान है। कहा जाता है कि जितने दिन तक काशी है, उतने दिन तक हिन्दुधर्म को कोई नष्ट नहीं कर पायेगा। काशी शब्द का अर्थ है मुक्ति। काश् धातु का अर्थ प्रकाश होता है। जिससे सब प्रकाशित होता है, वही काशी है। काशी ज्ञानपुरी,

वाराणसी

विमुक्त नगरी है। विश्वनाथ और अन्नपूर्णा काशी के अधिष्ठातृ देव-देवी हैं। प्राय: प्रत्येक हिन्दू के मन में काशीवास या काशीदर्शन की इच्छा उत्पन्न होती है। अनेकों की धारणा है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है। इसी विश्वास से बहुत संन्यासी और व्यक्ति काशी में निवास करते हैं।

१९७० ई. के फरवरी महीने में मैं कई दिनों तक काशी में था। स्वयंप्रभानन्दजी (ताराप्रसन्न महाराज) अद्वैत आश्रम, काशी में रहते थे। मैंने पूछा, ''महाराज, शास्त्र कहते हैं कि वासनाक्षय नहीं होने से तत्त्वज्ञान नहीं होता और तत्त्वज्ञान नहीं होने से अन्तिम जन्म होना सम्भव नहीं। अत: शास्त्र, ठाकुर और श्रीमाँ ने कहा हैं 'काशी में मरने से मुक्ति होती है।' तब तो शास्त्र पढ़ना निरर्थक हुआ। वेदान्त आदि शास्त्र को गंगाजल में विसर्जन करके काशीवास करना ही अच्छा है।'' यह सुनते ही महाराज तो मेरे ऊपर बहुत नाराज हो गये। उन्होंने कहा, ''हम वृद्धलोग उसी विश्वास को लेकर काशीवास कर रहे हैं और तुम आज का छोकरा आकर हमलोगों के मन में शंका उत्पन्न करना चाह चाहता है?'' मैंने कहा, ''नहीं महाराज, आप वरिष्ठ तथा शास्त्रज्ञ संन्यासी हैं। मैं आपसे सत्य जानना चाहता हूँ।'' तब उन्होंने शान्त होकर कहा, 'तुम भी सही और मैं भी सही अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और फिर काशी में मरने से मुक्ति होती है।'' मैंने कहा, ''हम दोनों सही कैसे होंगे?'' उन्होंने थोड़ा-सा हँसकर कहा, ''बाबा विश्वनाथ अन्त समय में ज्ञान दे देते हैं।''

१९५० ई. के बाद से काशी में रामकृष्ण संघ के बहुत वरिष्ठ संन्यासी रामकृष्ण अद्वैत आश्रम तथा सेवाश्रम के १० नम्बर वार्ड में निवास करते थे। ये लोग श्रीमाँ, राजा महाराज, महापुरुष महाराज तथा शरत् महाराज के शिष्य थे। १९५९ ई. से मेरा काशी में आना-जाना आरम्भ हुआ। कई वरिष्ठ संन्यासियों का सत्संग किया हूँ। उनकी कुछ-कुछ स्मृति दैनन्दिनी में लिखकर रखता था। बहुत दुर्भाग्य की बात है कि बहुत कम संन्यासियों ने ही उनलोगों की स्मृति लिखी है। मैं देखता था कि कोई-कोई संन्यासी काशी के अद्वैत आश्रम के बरामदे में बैठकर सन्ध्या समय ठाकुर के पार्षदों के सम्बन्ध में बताया करते थे। स्वामी धीरेशानन्दजी ने उनलोगों की बहुत-सी बातें दैनन्दिनी में लिखकर रखी तथा वह दैनन्दिनी मुझे दी थी। गुरुदास गुप्त स्वामी सारदानन्द जी महाराज के शिष्य थे। वे महाविद्यालय के अध्यापक थे। वे अविवाहित तथा ब्रह्मचारी के जैसा जीवन-यापन करते थे। सेवा-निवृत्त होने पर उन्होंने शेष जीवन काशी में ही व्यतीत किया था। उन्होंने ठाकुर के पार्षदों के सम्बन्ध में

वरिष्ठ संन्यासियों से जो सुना था, उसको विभिन्न दैनन्दिनी में लिखकर रखा था। स्वामी रघुवरानन्द (रामप्रसाद महाराज) ने १९८२ ई. में काशी में गुरुदास गुप्त की सभी दैनन्दिनी मुझको दे दी।

मैं सदा नवीनता का पुजारी रहा हूँ। नवीन कुछ सुनने या जानने हेतु मेरा बहुत उत्साह और कौतूहल रहता है। वह मेरे मन को सतेज कर देता है। लीलाप्रसंग और वचनामृत को छोड़कर भी ठाकुर, श्रीमाँ तथा पार्षदों की बहुत सारी बातें तथा कहानियाँ अनेक जगहों पर बिखरी हुई हैं। मैं उसका बहुत थोड़ा-सा अंश संग्रह कर पाया हूँ। यह मेरी आत्म-स्मृति नहीं है – यह उन महान वरिष्ठ संन्यासियों की पुण्य-स्मृति है। इन लोगों ने ठाकुर के पार्षदों से किस प्रकार शिक्षा ग्रहण की थी, भावी पीढ़ी को वह जानना आवश्यक है, नहीं तो हमलोग परम्परा भूल जायेंगे।

स्वामी अचलानन्द

स्वामी अचलानन्द (१८७६-१९४७) स्वामी विवेकानन्द जी के शिष्य थे। अपना अन्तिम दिन उन्होंने काशी में व्यतीत किया था। उनका पूर्वाश्रम का नाम था केदारनाथ मल्लिक। स्वामीजी उनको 'केदारबाबा' कहकर पुकारते थे, इसीलिए वे इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। १९३८ ई. वे मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हुए थे तथा १९४७ ई. में काशी में शरीर-त्याग किया। उन्होंने स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज का बहुत सान्निध्य पाया था।

स्वामी वामदेवानन्द (रमेण महाराज) अद्वैत आश्रम के व्यवस्थापक थे। उन्होंने ठाकुर के पार्षदों की जीवनी लिखने हेतु तथ्य-संग्रह करना आरम्भ किया। उन्होंने काशी में केदारबाबा को स्वामी निरंजनानन्द और स्वामी अद्वैतानन्द जी के सम्बन्ध में तथ्य भेजने के लिए कहा। केदारबाबा ने १८/१२/१९४६ को निम्नलिखित तथ्य भेजा था, जो अद्वैत आश्रम के अभिलेखागार में रखा था; मैंने वहाँ से अपने दैनन्दिनी में लिखकर रख लिया।

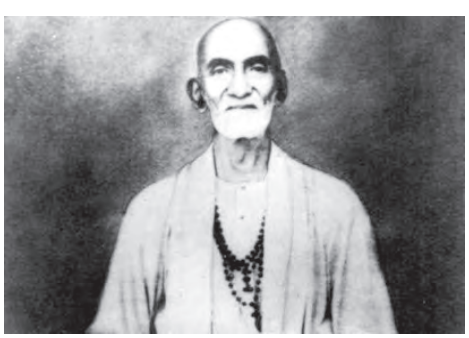

स्वामी अचलानन्द

स्वामी निरंजनानन्द महाराज जी की बातें

ठाकुर जो पूर्णब्रह्म नारायण रूप में अवतीर्ण हुए थे, इस पर वे दृढ़ विश्वास करते थे तथा कहते थे जो कोई उनके भाव को ग्रहण करेगा, उसको भय-चिन्ता नहीं होगी।

स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज

श्रीमाँ के सम्बन्ध में वे बहुत उच्चभाव की धारणा रखते थे। उनकी भावना थी कि वे श्रीमाँ की कृपा से सब कुछ कर सकते हैं।

ठाकुर के सम्बन्ध में वे एक बात कहा करते थे, यदि कोई युवक उनके पास आकर कहता कि 'विवाह नहीं करूँगा' तो ठाकुर उसको गोद में लेकर नाचते थे।

ठाकुर को जीवन्त, जाग्रत, चैतन्यमय तथा अत्यन्त अपना मानकर आन्तरिकता के साथ सेवा करना होगा, यही उनकी श्रेष्ठ पूजा है। मन्त्र-तन्त्र की ओर वे अधिक ध्यान नहीं देते थे।

वे स्वयं अत्यन्त तेजस्वी पुरुष थे, किसी की परवाह नहीं करते थे। एकमात्र ठाकुर ही उनके आश्रय हैं, ऐसा वे सोचते थे। सभी के भीतर बेपरवाह के भाव को वे पसन्द करते थे।

स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवादि कार्यों के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी और सभी को नारायण-ज्ञान से सेवा करने हेतु उत्साह देते थे।

वे स्वयं अत्यन्त सत्य-निष्ठ थे और सभी लोग सत्य-निष्ठ हों, ऐसी उनकी आन्तरिक इच्छा थी। जिसकी बातें सत्य नहीं रहती थीं, उसकी बातों को वे बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में एक घटना हुई थी। काशी सेवाश्रम के आरम्भिक अवस्था में सेवादि कार्यों को देखकर कोलकाता के एक धनी व्यक्ति अत्यन्त सन्तुष्ट हुए तथा निरंजन महाराज से कहा कि वे अकेले ही सेवाश्रम के जमीन तथा मकानों के निर्माण हेतु समस्त व्ययभार लेंगे। किन्तु कई दिनों के पश्चात् उन्होंने अपना मत परिवर्तन कर लिया तथा कहा कि अभी आप ५०० रुपया मासिक करके लीजिए, बाद में और देखा जायेगा। उनके इस मत-परिवर्तन से निरंजन महाराज अत्यन्त क्षुब्ध तथा रुष्ट हुए और उससे एक पैसा भी ग्रहण नहीं किया।

उनका हृदय बहुत उदार था तथा आश्रित लोगों की सभी प्रकार से सहायता करते थे। इसीलिए किसी अन्य बातों की ओर ध्यान नहीं देते थे।

युवकों को त्याग के मार्ग पर आने हेतु बहुत उत्साहित करते थे, फिर यह मार्ग बहुत कठिन है, इससे भी उन्हें सावधान कर दिया करते थे। एक बार एक युवक के गृहत्याग के संकल्प को जानकर उस युवक के एक मित्र को पत्र में लिखा था, ''संन्यासी होगा, बहुत अच्छी बात है, किन्तु मार्ग बहुत कठिन है। **'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति।** (कठोपनिषद् १/३/१४)' ''

वे कहते थे, ''संन्यासी के लिए मधुकरी अन्न सर्वोत्तम है।'' वे स्वयं भी कई बार मधुकरी करते तथा मधुकरी का अन्न ठाकुर को निवेदित करके प्रसाद ग्रहण करते थे।

शरीर को स्वस्थ रखने हेतु वे बहुत उत्साहित रहते थे। जिससे युवकों का शरीर दृढ़ तथा कर्मठ हो, इस ओर वे विशेष ध्यान रखते थे।

स्वामी अद्वैतानन्द जी की स्मृति

श्रीठाकुर के उपदेश तथा निषेध वचनों का वे स्वयं अक्षरश: पालन करते थे तथा सभी को पालन करने के लिए कहते थे। किसी के द्वारा इसके विरुद्ध-आचरण करने पर वे बहुत नाराज होते थे।

श्रीठाकुर के जैसा-ही उनका भी बड़े-बड़े विषयों से लेकर छोटे-छोटे विषयों के प्रति ध्यान रहता था। बहुत जोर से दरवाजा बन्द करने पर तथा नया वस्त्र को जोर से फाड़ने को वे मना करते थे।

श्रीठाकुर-सेवा पर उनकी दृढ़निष्ठा थी। साफ-सुथरा रहना, सभी सामान यथास्थान सजाकर रखना तथा सभी कार्य निर्दिष्ट समय पर करना उनका स्वाभाविक गुण था। वे सभी को इसी प्रकार से जीने का उपदेश देते थे।

स्वामी अद्वैतानन्द

नित्य-नियमित व्यायाम का अभ्यास करने को कहते तथा स्वयं भी वृद्धावस्था में भी व्यायाम करते थे।

आलस्य को किसी प्रकार सहन नहीं करते थे। सभी समय किसी-न-किसी कार्य में व्यस्त रहने को कहते थे।

मठ के बगीचा में तथा अन्य कार्य बहुत श्रद्धा से किया करते थे तथा सभी को उसी प्रकार करने को कहते थे। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३२९ का शेष भाग

भगवान को हरि कहा जाता है, क्योंकि वे भक्तों के अज्ञान को दूर करते हैं। उनकी बाधाएँ दूर करते हैं। भक्त का अज्ञान और दु:ख हर लेते हैं, इसलिए उनका नाम हुआ हरि। इस नाम का दूसरा अर्थ यह है कि जब यज्ञ में आहुति दी जाती है, तब वे अपने यज्ञभाग का हरण करते हैं। इसलिए भी हरि कहलाते हैं। तीसरा उन्होंने हरा रंग धारण किया था। कब धारण किया था? पुराणों के प्रसंग में आता है कि उन्होंने हरा रंग धारण किया था। तब से भगवान को हरि कहते हैं। संजय यहाँ बता रहे हैं कि अर्जुन का अज्ञान, अर्जुन की जो सीमित वृत्ति थी, उसका भगवान हरण करते हैं। उसे दिव्यचक्षु प्रदान करते हैं, जिसके सहारे अर्जुन उनके उस विराट्रूप को देखने में समर्थ होता है। योगेश्वर कहना ही पर्याप्त था, पर यहाँ तो कहा जा रहा है कि भगवान महायोगियों के भी ईश्वर हैं। जनक, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ इत्यादि महायोगी हैं। ये लोग संसार में रहकर साधना करते हुय उस परम तत्त्व को जानने के अधिकारी बने और उनके जीवन में वह ज्ञान उतर गया। इसलिए वे महायोगी कहलाए। ऐसे महायोगी भी जिन्हें ईश्वर मानते हैं वे हैं श्रीकृष्ण ! **(क्रमश:)**

'मैं कौन हूँ' इसका भली भाँति विचार करने पर दिखाई देता है कि मैं नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। एक प्याज लो और उसके छिलकों को अलग करते जाओ। पहले बाहरी लाल छिलके, फिर मोटे सफेद छिलके मिलेंगे। इन्हें भी एक-एक करके निकालते जाओ। अन्त में तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। उस अवस्था में फिर मनुष्य को अपने अहं का अस्तित्व ही नहीं मिलता और तब उसे ढूँढ़नेवाला ही कहाँ रह जाता है? उस अवस्था में उसे अपने शुद्ध बोध में ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का जो अनुभव होता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? – श्रीरामकृष्ण देव

समाचार और सूचनाएँ

भारत स्थित केन्द्रों का समाचार

रामकृष्ण मिशन के १२५वें स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में **१ मई, २०२२ को बेलूड़ मठ** में कार्यक्रम का आयोजन किया गया। जिसमें संघाध्यक्ष स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष स्वामी प्रभानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष स्वामी भजनानन्द, महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज, सह-महासचिव स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी सत्येशानन्द तथा अन्य गणमान्य लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, तंजौर द्वारा रथयात्रा के उपलक्ष्य में १३ अप्रैल, २०२२ को तंजौर शहर में १५०० भक्तों में छाँछ का वितरण किया गया ।

नैतिक शिक्षा एवं युवा कार्यक्रम

रामकृष्ण मठ, बामनमुड़ा, द्वारा ३ अप्रैल, २०२२ को युवा संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के कुल १७४ युवाओं ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली द्वारा १ से २३ अप्रैल, २०२२ तक ८ ऑफलाईन एवं २ ऑनलाइन नैतिक शिक्षा कार्यशालाओं का आयोजन किया गया ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, इन्दौर द्वारा १५ से १७ अप्रैल, २०२२ तक, बालकों के लिये ग्रीष्म-शिविर का आयोजन किया गया । कुल ८३ बालकों ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर ने १६ अप्रैल को युवा-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें १६०युवाओं ने भाग लिया ।

लमडंग आश्रम में २८ मार्च, २०२२ को सांस्कृतिक प्रतियोगिता आयोजित की गयी, जिसमें ६ विद्यालयों से ९७ विद्यार्थियों ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मठ, मदुरै द्वारा ५ अप्रैल, २०२२ को व्यक्तित्व-निर्माण शिविर का आयोजन किया, जिसमें १२८ महाविद्यालयीय विद्यार्थियों ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची द्वारा ८ अप्रैल को राँची जिले के अंगारा ब्लॉक स्थित मुंगाडिह गाँव में युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें २४ गाँवों से २७५ युवाओं ने भाग लिया । आश्रम द्वारा २४ अप्रैल, २०२२ को आश्रम में एक भक्त शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें लगभग २०० भक्तों ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मठ, तंजौर २४ अप्रैल, २०२२ को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें कुल ५० शिक्षकों ने भाग लिया ।